योगविद्या

वर्ष 10 अंक 8
अगस्त 2021
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2021

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के रंगीन फोटो : युवा योग मित्र मण्डल के सदस्यों के लिए योग शिक्षा सत्र, 2021

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

हठयोग की महिमा

हठयोग वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित प्राचीन भारतीय ऋषियों तथा योगियों द्वारा प्रदत्त यौगिक व्यायामों की प्रणाली है। हठ शब्द में ह का तात्पर्य सूर्य से तथा ठ का तात्पर्य चन्द्र से है। प्राण को सूर्य के नाम से पुकारते हैं और अपान को चन्द्र के नाम से। अत: हठयोग प्राण तथा अपान का मिलन है। हठयोग राजयोग का सहायक है। जहाँ हठयोग का अन्त होता है, वहीं से राजयोग प्रारम्भ होता है।

हठयोग आत्म-शोधन के लिए एक सम्पूर्ण प्रणाली है। सुन्दर स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए यह एक दिव्य आशीर्वाद है। शरीर तथा मन यन्त्र हैं। हठयोग के अभ्यास से ये यन्त्र स्वस्थ, मजबूत तथा सशक्त बनते हैं। हठयोग साधक को सुन्दर स्वास्थ्य, दीर्घायु, शक्ति, वीर्य तथा स्फूर्ति प्रदान करता है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 10 अंक 8 अगस्त 2021
(प्रकाशन का 59 वाँ वर्ष)

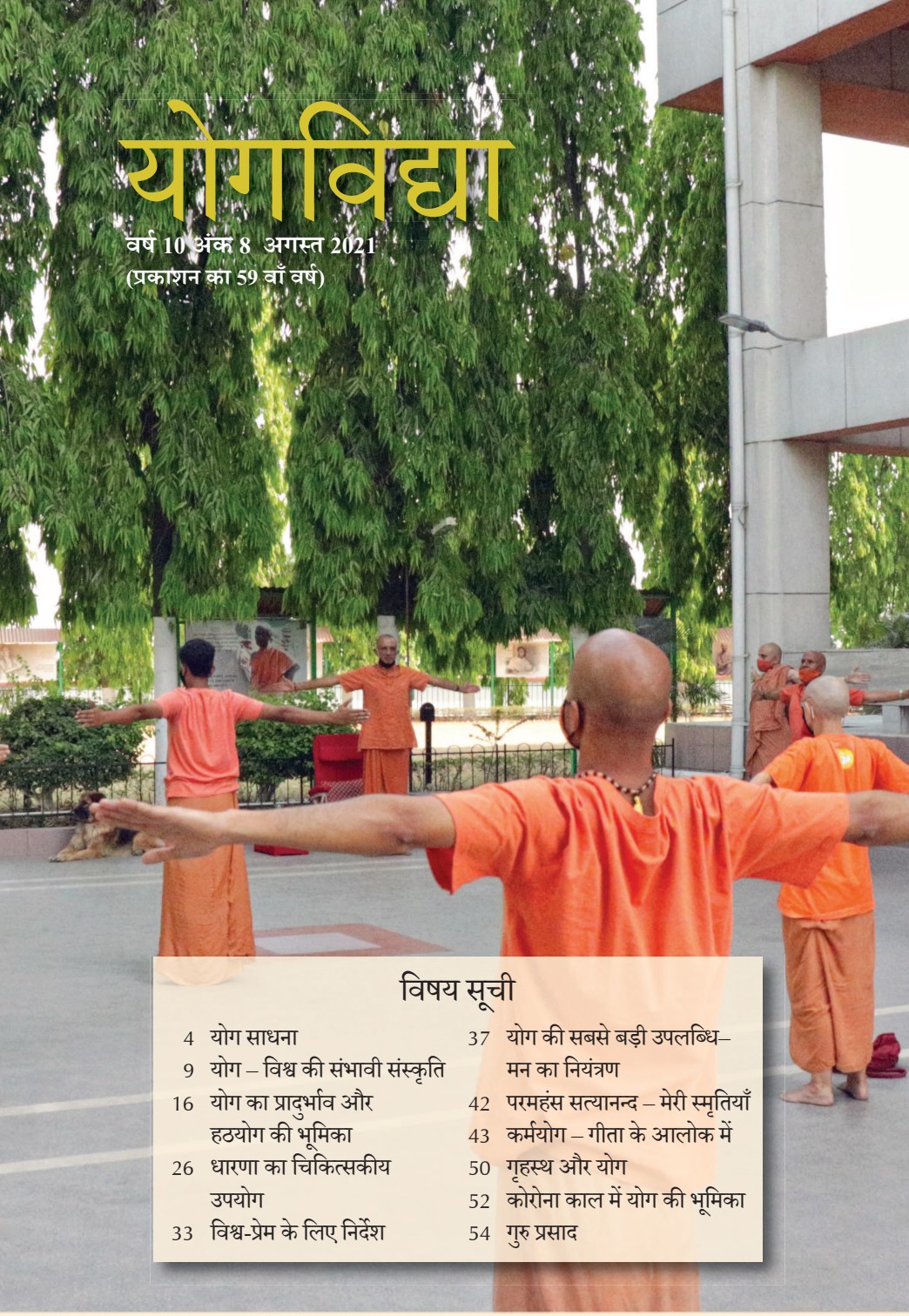

विषय सूची

4 योग साधना
9 योग – विश्व की संभावी संस्कृति
16 योग का प्रादुर्भाव और हठयोग की भूमिका
26 धारणा का चिकित्सकीय उपयोग
33 विश्व-प्रेम के लिए निर्देश
37 योग की सबसे बड़ी उपलब्धि– मन का नियंत्रण
42 परमहंस सत्यानन्द – मेरी स्मृतियाँ
43 कर्मयोग – गीता के आलोक में
50 गृहस्थ और योग
52 कोरोना काल में योग की भूमिका
54 गुरु प्रसाद

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

योग साधना

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

साधना शब्द की उत्पत्ति 'साध्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है प्रयत्न करना, किसी विशेष सिद्धि की प्राप्ति के लिए प्रयास करना। जो प्रयत्न करता है, उसे साधक कहते हैं। यदि अभीष्ट फल-सिद्धि की प्राप्ति हुई तो उसे सिद्ध कहते हैं। जिसे ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान है, वह पूर्ण सिद्ध है। साधना के बिना आत्म-साक्षात्कार अथवा ईश्वर-दर्शन सम्भव नहीं है। कोई भी आध्यात्मिक प्रयत्न साधना है। साधना तथा अभ्यास पर्यायवायी शब्द हैं। जो साधना से प्राप्य हो, उसे साध्य कहते हैं। ईश्वर-साक्षात्कार साध्य अथवा लक्ष्य है।

यदि आप शीघ्र उन्नति करना चाहते हैं, तो आपको ठीक प्रकार की साधना मालूम हो जानी चाहिए। यदि आप आत्मावलम्बी हैं तो स्वत: ही नित्यप्रति के अभ्यास के लिए साधना को चुन सकते हैं। यदि आपमें आत्मार्पण का भाव है, तो अपने गुरु से अपने लिए उपयुक्त साधना का प्रकार प्राप्त कर लीजिए तथा गम्भीर श्रद्धा के साथ उसका अभ्यास कीजिए।

आप अनावश्यक ही अपना बन्धन दीर्घकाल तक क्यों बनाये रखेंगे? आप अभी ही अपने जन्माधिकार को प्राप्त क्यों नहीं करते? अभी आप अपने बन्धन को क्यों नहीं तोड़ते? विलम्ब का अर्थ है कष्टों की वृद्धि। आप किसी भी क्षण बन्धन को तोड़ सकते हैं। यह आपकी शक्ति के अन्दर है। अभी कीजिए। खड़े हो जाइए। कटिबद्ध होइए। उग्र तथा अनवरत साधना कीजिए। मुक्ति प्राप्त कर नित्य सुख का उपभोग कीजिए। अनुशासन, तप, आत्म-संयम तथा ध्यान के द्वारा निम्न प्रकृति को उच्च प्रकृति का सेवक बना डालिए। यही आपकी मुक्ति का समारम्भ है।

आपके अन्दर का ईश्वरत्व बाहर की सभी वस्तुओं से अधिक शक्तिशाली है, अत: किसी भी वस्तु से भय न कीजिए। अपनी अन्तरात्मा पर ही निर्भर रहिए। अन्तर्दृष्टि द्वारा मूल से शक्ति पाइए। अपना सुधार कीजिए। चरित्र निर्माण कीजिए। हृदय को शुद्ध बनाइए। वृत्तियों को शान्त कीजिए। उफनते आवेगों को स्तब्ध कीजिए। बहिर्मुखी इन्द्रियों को समेट लीजिए। वासनाओं को नष्ट कीजिए। आप गम्भीर ध्यान में महिमामय आत्मा के दर्शन करेंगे।

पूर्ण स्वतन्त्रता तथा निर्वाण-प्राप्ति के पाँच साधन हैं। इनसे ही परम सुख की प्राप्ति होती है। ये हैं – सत्संग, विवेक, वैराग्य, 'मैं कौन हूँ?' का विचार तथा ध्यान। ये ही स्वर्ग हैं। ये ही धर्म हैं। ये ही सर्वोच्च सुख हैं। पहले भला मनुष्य बनिए। तब इन्द्रियों का दमन कीजिए। फिर निम्न मन को उच्च मन से पराजित कीजिए। तब ईश्वरीय ज्योति का अवतरण होगा।

बिना जल्दीबाजी किये शान्तिपूर्वक, संलग्नतापूर्वक ध्यान का अभ्यास कीजिए। आप शीघ्र ही समाधि प्राप्त कर लेंगे। आध्यात्मिक जीवन कठिन तथा श्रमयुक्त है, इसके लिए सतत् सावधानी तथा दीर्घ उत्साह की आवश्यकता है। तभी ठोस उन्नति सम्भव है। आपने स्वयं ही अज्ञानवश अपने लिए बन्दीगृह की दीवारें खड़ी की हैं। आप विवेक तथा 'मैं कौन हूँ?' के विचार द्वारा इन दीवारों को ध्वस्त कर सकते हैं।

कष्ट आदमी को शुद्ध बनाते हैं। वे पाप तथा मल को जला डालते हैं। ईश्वरत्व अधिकाधिक प्रकट होने लगता है। उससे आन्तरिक शक्ति मिलती है, संकल्प-शक्ति विकसित होती तथा तितिक्षा-शक्ति बढ़ती है। अत: कष्ट भी छिपे रूप से वरदान ही हैं।

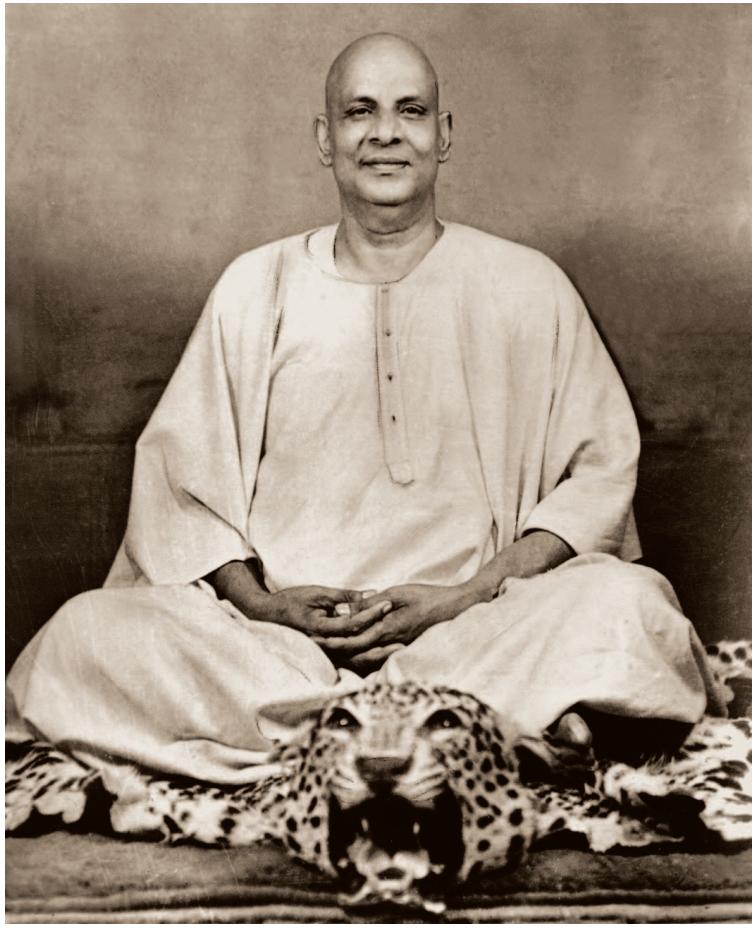

ध्यान के समय प्रकाश की एक किरण भी आपके मार्ग को आलोकित करेगी। इससे आपको पर्याप्त उत्साह तथा आन्तरिक बल मिलेगा। इससे आप अधिकाधिक साधना करने के लिए प्रेरित होंगे। ध्यान की गम्भीरता बढ़ने पर, शरीर-चैतन्य से ऊपर उठने पर आप इस प्रकाश-किरण का अनुभव करेंगे।

आत्मा की प्रसुप्त क्षमताओं का प्रस्फुटन ही जीवन है। दिव्य जीवन बिताइए। ध्यान, जप, कीर्तन तथा स्वाध्याय के द्वारा दिव्य विचारों को उन्नत कीजिए। शाश्वत जीवन की सरिता में स्नान कीजिए। डुबकी लगाइए, गोता लगाइए, तैरिए, आनन्द लीजिए। आप युद्ध में लाखों व्यक्तियों को जीत सकते हैं, परन्तु मन पर विजय पाने से ही आप वास्तविक विजेता बन सकेंगे। जब तक आपकी इन्द्रियाँ विजित नहीं होतीं, तब तक आपको तपस्या, दम तथा प्रत्याहार का अभ्यास करते रहना चाहिए।

जब विद्युत् बल्ब कई परतों वाले कपड़े से ढका रहता है, तब उसकी प्रखर रोशनी प्राप्त नहीं होती। एक-एक कर परत हटाते जाइए और प्रकाश प्रखरतर होता जायेगा। उसी तरह स्वयं-प्रकाश आत्मा भी पंचकोशों से ढका हुआ है। ध्यान अथवा 'नेति-नेति' के अभ्यास द्वारा एक-एक कोश के पार जाते जाइए। आत्मा का प्रकाश बढ़ता जायेगा।

शान्तचित्त होकर बैठ जाइए। शरीर तथा मन के ऊपर अपना स्वामित्व स्थापित कीजिए। अपने हृदय के प्रकोष्ठ में गहरा गोता लगाइए तथा गम्भीर मौन-सागर में निमग्न हो जाइए। उसकी नि:शब्द वाणी को सुनिए। पहले हृदय को शुद्ध बनाइए, तब योग की सीढ़ियों पर साहस तथा अविचल उत्साह के साथ बढ़ते जाइए। शीघ्र ही ऊपर चढ़िए। ऋतम्भरा-प्रज्ञा प्राप्त कर ज्ञान-मन्दिर में प्रवेश कीजिए, वहाँ धर्म-मेघ से अमृत की वर्षा होती है।

सुदृढ़ नींव पर आध्यात्मिक जीवन का निर्माण कीजिए। ईश्वर-कृपा तथा चरित्र-बल ही पक्की नींव है। ईश्वर तथा उसके सनातन नियम की शरण में जाइए। इस पृथ्वी तथा स्वर्ग में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो आपके मार्ग में व्यवधान डाले। आत्म-साक्षात्कार में सफलता निश्चित है। आपके लिए विफलता है ही नहीं। आपके मार्ग पर सब-कुछ प्रकाशमय है।

विविध योगों की साधना

साधना का अर्थ कोई भी आध्यात्मिक अभ्यास है जिससे साधक ईश्वर को प्राप्त कर सके। साधना वह साधन है जिससे जीवन के लक्ष्य को पाया जाये। योग्यता, रुचि तथा उन्नति के स्तर के अनुसार व्यक्ति-व्यक्ति में साधना की भिन्नता होती है। हरेक व्यक्ति को अनुकूल साधना अवश्य ग्रहण कर लेनी चाहिए जिससे परम लक्ष्य की प्राप्ति हो। साध्य वह है जो साधना से प्राप्त किया जाये। यह ईश्वर या आत्मा या पुरुष है।

जो भक्तियोग का अनुगमन करते हैं, उन्हें जप अथवा भागवत या रामायण का स्वाध्याय करना चाहिए। श्रवण, स्मरण, कीर्तन, वन्दन, अर्चन, पाद-सेवन, सख्य, दास्य तथा आत्म-निवेदन रूपी नवधा-भक्ति के द्वारा भक्त उच्च कोटि की भक्ति को प्राप्त कर सकता है। भक्त को व्रत, अनुष्ठान, प्रार्थना तथा मानसिक पूजा भी करनी चाहिए। उन्हें दूसरों की नारायण-भाव से सेवा करनी चाहिए। भक्तियोगी के लिए यही साधन है।

जो कर्मयोग का अनुगमन करते हैं, उन्हें पीड़ित मानव-जाति तथा समाज की विविध रूप से निष्काम्य सेवा करनी चाहिए। उन्हें कर्म के फल को ईश्वरार्पित कर देना चाहिए। अपने को ईश्वर के हाथों का निमित्त समझ कर उन्हें कर्ता-भाव का त्याग करना चाहिए। स्वार्थ से मुक्त होकर इन्द्रियों का दमन करना चाहिए। अपने जीवन को मानव-सेवा के लिए पूर्णत: अर्पित कर देना चाहिए। उन्हें यह मानना चाहिए कि सारा जगत् ईश्वर का ही रूप है। इस भाव के साथ सेवा करने पर कालान्तर में चित्त शुद्ध हो जाता है। यही कर्मयोगियों की साधना है।

राजयोगी क्रमश: आठ सोपानों से होकर चढ़ता है। प्रारम्भ में वह यम-नियम का पालन करता है। तब वह आसन स्थिर बनाता है। प्रत्याहार, धारणा तथा ध्यान का अभ्यास कर वह समाधि प्राप्त करता है। संयम के द्वारा उसे विविध सिद्धियाँ मिलती हैं। वह चित्त की सभी वृत्तियों का निरोध करता है।

जो ज्ञान-मार्ग अथवा वेदान्त का अवलम्बन करते हैं, उन्हें सर्वप्रथम साधन-चतुष्टय – विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत् तथा मुमुक्षुत्व से युक्त होना चाहिए। तब वे ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाते हैं एवं उनसे श्रुतियों का श्रवण करते हैं। श्रवण, मनन

तथा निदिध्यासन के अभ्यास से वे आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करते हैं। तब ज्ञानी आनन्द में कह उठता है – 'आत्मा एकमेव है, आत्मा ही एक सत्य है। मैं ब्रह्म हूँ। अहं ब्रह्मास्मि। शिवोऽहम्। सर्वं खल्विदं ब्रह्म।' जीवनमुक्त आत्मा को सभी भूतों में तथा सभी भूतों को आत्मा में देखता है।

हठयोग के साधकों को चाहिए कि वे कुण्डलिनी-शक्ति को जाग्रत करने के लिए प्रयत्नशील बनें। आसन, प्राणायाम, मुद्रा तथा बन्ध के द्वारा मूलाधार-चक्र में प्रसुप्त कुण्डलिनी-शक्ति को जगाया जाता है। उन्हें प्राण तथा अपान को संयुक्त कर इस संयुक्त प्रवाह को सुषुम्ना-नाड़ी से ले जाना चाहिए। कुम्भक के द्वारा गर्मी बढ़ती है तथा कुण्डलिनी के साथ वायु विभिन्न चक्रों से होते हुए सहस्रार को जाती है। सहस्रार-चक्र में जब कुण्डलिनी भगवान् शिव से मिल जाती है, तब योगी परम शान्ति, सुख तथा अमृतत्व प्राप्त कर लेता है।

जीवन का लक्ष्य भगवत्-साक्षात्कार अथवा आत्म-साक्षात्कार है। यह सभी का लक्ष्य है। इसमें वर्ण, राष्ट्रीयता, शैक्षिक योग्यता, सामाजिक परिस्थिति, जाति, सम्प्रदाय और स्त्री-पुरुष का कोई अपवाद नहीं है। सभी प्राणी चेतन अथवा अचेतन अवस्था में इस लक्ष्य की ओर ही प्रगतिशील हैं। मनुष्य का जीवन आत्मिक है, परन्तु उसने इसे भुला दिया है। उसका इहलौकिक जीवन इस आत्मिक जीवन की योग्यता प्राप्त करने के लिए है। इस विस्मृत आध्यात्मिक जीवन की पुन: प्राप्ति ही उसके इहलौकिक जीवन के संघर्ष की पूर्णता तथा उसकी सफलता और उपलब्धियों की पूर्णता है। जब मनुष्य भगवत्-साक्षात्कार के पीछे लगता है और अपने को सभी सीमित, छुद्र एवं विनाशशील पदार्थों से मुक्त बनाने के लिए संघर्षरत होता है, तभी उसके मानव-व्यक्तित्व का पूर्ण सौन्दर्य, उसके अस्तित्व का पूर्ण गाम्भीर्य तथा उसकी प्रकृति की गरिमा और महिमा प्रकट होती है।

संकल्प और इच्छा मात्र से ही परम लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती। आत्मज्ञान की प्राप्ति एक महान् कार्य है। श्रुतियों ने इस संघर्ष को *क्षुरस्य धारा* की संज्ञा दी है। साधक जब तक भगवत्-साक्षात्कार नहीं कर लेता, तब तक उसे निरन्तर एक बलिदान के पीछे दूसरा बलिदान देना होता है, एक कठोर परीक्षा के अनन्तर दूसरी कठोर परीक्षा से गुजरना होता है तथा एक समस्या के पश्चात् दूसरी समस्या का समाधान ढूँढना होता है। अतृप्त आध्यात्मिक पिपासा, अक्षुण्ण उत्साह और गम्भीरता, मन की एकाग्रता तथा किसी भी मूल्य पर लक्ष्य तक पहुँचने का दृढ़ निश्चय – ये ही वे अस्त्र हैं जिनसे भगवान का अनुसन्धान करने वाले व्यक्ति को सुसज्जित होना पड़ता है। तब निश्चय ही उसे आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति होगी और वह सन्त के रूप में विभासित होगा। वीर साधक! शाश्वत जीवन, चिरन्तन ज्योति तथा अनन्त आनन्द के पथ पर दृढ़ता से अग्रसर होओ। भगवान् की प्राप्ति के लिए आप जो संघर्ष कर रहे हैं, सर्वशक्तिमान् प्रभु उसमें आपका साथ दें!

योग – विश्व की संभावी संस्कृति

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आज का आदमी विषयों, उपाधियों और इस शरीर के साथ रहते-रहते अपना मूल लक्ष्य ही विस्मृत कर चुका है। इस प्रत्यक्ष और स्थूल संसार से उसका स्नायु संस्थान इतना अभ्यस्त हो गया है कि उसे अब अपना यही स्वरूप, नाम, पद आदि अच्छे लगने लगे हैं और वह अपने सूक्ष्म शरीर की चिन्ता भी नहीं करता। वस्तुत: आज इस बात की आवश्यकता है कि हम एकान्त के कुछ क्षणों में अपने खोये हुए रूप, नाम आदि का शोध करें। उसकी मूल प्रकृति को समझें। योग इसी दिशा में मनुष्य को मदद पहुँचाता है।

योग पर अनुसंधान

आज समाज में योग के सम्बन्ध में धारणायें विशेष रूप से परिवर्तित हुई हैं। जहाँ मैं 1956 में पहली बार आया था, तब केवल 15-20 छात्र थे, किन्तु आज योग के विषय में श्रद्धा-विश्वास की जगह सर्वत्र खोज और प्रयोगों ने ले ली है। मानव जीवन पर योग के विभिन्न प्रभावों को विज्ञान द्वारा सिद्ध किया जा चुका है। कहने में यह बात बड़ी विचित्र लगती है कि योग की दृष्टि में हमारी परम्परा विशेष समृद्ध रही है, किन्तु आज इस विषय पर पश्चिमी देशों में जितनी अधिक खोजें हुई हैं, उनकी शतांश भी अपने देश में नहीं हुई। यांत्रिकता तथा तकनीकी ज्ञान में तो हम आज पश्चिमी देशों से पीछे हैं ही, योग के क्षेत्र में भी 100 वर्ष पीछे रह गये हैं। पश्चिमी वैज्ञानिक इस क्षेत्र में मानव मन की जिन गहराइयों को स्पर्श कर चुके हैं, अभी हम उनकी कल्पना तक नहीं कर सकते। पश्चिमी देशों में योग के जिन पक्षों पर खोजें हुयी हैं, अगर उनका नामोल्लेख ही किया जाए तो यह सम्मेलन वर्षों तक चल सकता है।

इसमें सन्देह नहीं है कि हम इस क्षेत्र में योग्य हैं, किन्तु आज हमारे सांस्कृतिक विश्वास पूरी तरह खत्म हो चुके हैं। सांस्कृतिक विश्वास ही राष्ट्र की धरोहर और पूर्वजों की विरासत होती है। अगर हम उसे ठीक तरह से नहीं समझ पाते तो फिर हमारा नैतिक विघटन प्रारम्भ हो जाता है। आज विश्व के कोने-कोने में बैठे हजारों वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य के मन का एक ऐसा ऊर्जा चक्र होता है, जो स्वयं उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करता है और दूसरों के व्यक्तित्व पर भी प्रभाव डालता है। आज विज्ञान जहाँ निरुत्तर हो गया है, वहाँ योग उन प्रश्नों का प्रमाणिकतापूर्वक उत्तर दे रहा है। यह सिद्ध हो चुका है कि मनुष्य के मन में उठने वाले विचार, करुणा, दया, प्रेम, शान्ति, प्रसन्नता आदि सभी भाव विद्युत शक्ति के रूप में रहते हैं और व्यक्तित्व से उसी प्रकार विकीर्णित होते हैं, जैसे ट्यूब लाइट से प्रकाश। हम जहाँ भी जाते हैं, अपने साथ अपने भावों व विचारों का रेडियेशन लेकर जाते हैं। प्रसन्नता का प्रकाश और मनहूसियत की काली छाया हमारा पीछा नहीं छोड़ती।

हमारी प्राणशक्ति बहुत कार्य करती है। यह केवल साँस की शक्ति नहीं है, बल्कि सूक्ष्म शक्ति है। यह शरीर की अणु शक्ति है। इसे हम पैदा भी कर सकते हैं और नष्ट भी कर सकते हैं। इसका उपयोग भी कर सकते हैं और दुरुपयोग भी। यह एक विश्वात्मक शक्ति है, जो सृष्टि के कण-कण में विद्यमान है। यह जीवनी शक्ति है, केवल भौतिक तत्त्व नहीं। जिस तरह जल प्रवाह के द्वारा विद्युत का निर्माण किया जाता है, जिस तरह पदार्थ का विखण्डन करने से ऊर्जा प्राप्त होती है, उसी तरह प्राणायाम के द्वारा प्राण की शक्ति का भी विखण्डन और संचयन किया जाता है। अब पश्चिमी वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके हैं कि योग के द्वारा स्थूल से सूक्ष्म तक की पूर्ण यात्रा सम्पन्न की जा सकती है। आज संसार के लाखों-करोड़ों लोगों

ने योग के दिये गए आश्वासनों को सहर्ष स्वीकार कर लिया है। योग को विज्ञान के प्रयोगों द्वारा परख लिया है। इसमें अन्धविश्वास का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि आज हमें जीवन जीने की इच्छा है अथवा हम जीवन प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें अपने अन्दर के तत्त्वों को समझना होगा, अपने वास्तविक रूप को जानना होगा। मृत्यु और दु:ख जीवन को ठीक तरह से न समझने के कारण ही उत्पन्न होते हैं।

शरीर के सूक्ष्म आयाम

यौगिक शास्त्र यह स्वीकार करते हैं कि इस स्थूल शरीर के अन्दर एक सूक्ष्म वस्तु है, वह है प्राण। उसके अन्दर एक सूक्ष्म वस्तु है, वह है मन। उसके भीतर भी एक सूक्ष्म वस्तु है, जिसे विज्ञान कहते हैं। विज्ञान के अन्दर भी एक वस्तु है, जिसे अहं या अस्मिता कहते हैं और उसके अन्दर भी एक सूक्ष्म वस्तु है, जिसे आत्मा कहा जाता है। इसी का दूसरा नाम है आनन्द या ईश्वर। जैसे दूध के अन्दर दही, दही के अन्दर मक्खन और मक्खन के अन्दर घी आदि समाहित रहते हैं, ठीक उसी प्रकार हमारे शरीर के अन्दर भी कई स्तर होते हैं। इसे डिब्बा के अन्दर डिब्बा समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। ये तो सूक्ष्म तत्त्व हैं, जो क्रमश: अति सूक्ष्म होते चले जाते हैं।

यह शरीर, जिसे मिट्टी का कहा जाता है, बड़ा ही विचित्र होता है। इसकी रचना कमाल की है। 'इस बंगले का एक अचंभा, नारि-पुरुष का जोड़ा, कहे कबीर सुनो भई साधो, जिन जोड़ा तिन तोड़ा' – कबीर की इन पंक्तियों में बड़ा ही रहस्य छिपा हुआ है। जो जोड़ता है, वह तोड़ता है। यह तोड़ना प्राणशक्ति का विघटन है। ठीक वैसे ही जैसे पदार्थ का विखण्डन किया जाता है। प्राणशक्ति के विखण्डन से जो ऊर्जा प्राप्त होती है, वही मन और प्राणशक्तियों को जोड़ने का कार्य करती है। हमारे ऋषि-मुनियों ने इस शरीर में 72 हजार नाड़ी समूहों की स्थिति मानी है। इनमें से 10 प्रमुख हैं। इनमें भी तीन विशेष प्रसिद्ध हैं – इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। नाड़ी शब्द नद् धातु से बना है। इसे गलत नहीं समझना चाहिए। इसका अर्थ है वह पथ जो शक्ति, जीवन, मन, विचार, भावों आदि को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाता है। जैसे विद्युत को ले जाने के लिए तार होते हैं, वैसे ही शरीर में नाड़ियाँ होती हैं, किन्तु इनका आकार-प्रकार अति सूक्ष्म और संवेदनशील होता है।

इड़ा नाड़ी मन रूपी शक्ति को तरंगित करती है। यह मस्तिष्क से सम्बन्धित है और सारे शरीर में इसका परिक्षेत्र फैला हुआ है। पिंगला नाड़ी प्राणशक्ति या जीवन तत्त्व को सारे शरीर में संचालित करती है और मस्तिष्क में इसका मूल केन्द्र होता है। ये दोनों ही संस्थान अत्यन्त व्यवस्थित और रहस्यमय हैं। उदाहरणार्थ, मैं बोल रहा हूँ और आप सुन रहे हैं। मैं जो कह रहा हूँ, आप उसे उसी रूप में समझ रहे हैं। इस क्रिया में प्राण और मन, हमारी ये दोनों शक्तियाँ साथ-साथ क्रियाशील

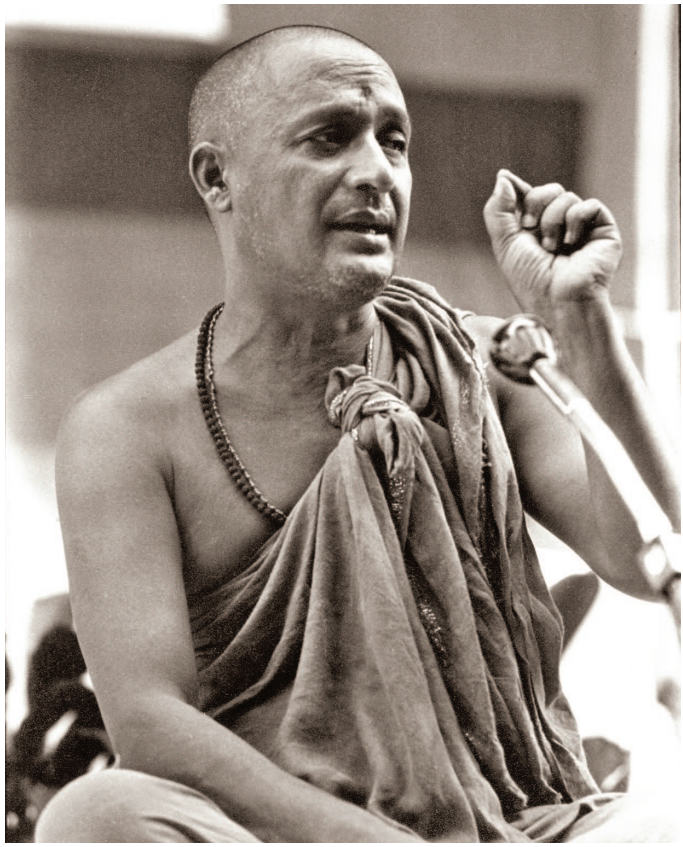

हैं। इनकी सूक्ष्म क्रिया प्रणाली में कहीं कोई व्यवधान नहीं है। इस शरीर में तीन ग्रंथियाँ भी होती हैं, जो शरीर के सारे परिवर्तनों के लिए उत्तरदायी होती हैं। इनसे भाव और विचार भी परिवर्तित होते हैं। इनके नाम हैं ब्रह्म, विष्णु और रुद्र ग्रंथियाँ। सप्त-शोधन विद्या द्वारा इस शरीर और ग्रंथियों को तपाया जाता है, जिसके कारण यह शरीर कच्चे घट की तरह पक कर सुदृढ़ हो जाता है। उस पर मन का नियंत्रण हो जाता है। यह कार्य हठयोग करता है। हठ में दो बीज मंत्र हैं – हं और ठं। हं का अर्थ होता है प्राण और ठं का अर्थ होता है मन। इन्हीं दोनों का योग हठयोग का विषय है। ये नाड़ियाँ इड़ा और पिंगला के नाम से भी जानी जाती हैं और इन्हें गंगा और यमुना भी कहा जाता है। ये दोनों नाड़ियाँ मन और प्राणशक्ति की संवाहक हैं। विद्युत तभी उत्पन्न होती है, जब दोनों में योग होता है। यही कारण है कि योग में सबसे पहले साधक को हठयोग की क्रियायें करायी जाती हैं। जब शरीर ठीक और नियंत्रित रहता है तभी ध्यान हो सकता है।

कुछ लोग शरीर, मन और आत्मा को अलग-अलग समझते हैं, यह भ्रान्ति है। ये तीनों उसी प्रकार भिन्न हैं, जिस प्रकार बचपन, युवावस्था और वृद्धावस्था पृथक् होती हैं। जिस प्रकार जीवन की ये तीनों अवस्थायें पृथक् नहीं हैं, उसी प्रकार शरीर, मन व आत्मा भी परस्पर संश्लिष्ट हैं। जिस प्रकार बचपन न हो तो युवावस्था और वृद्धावस्था का प्रश्न नहीं उठता, उसी प्रकार शरीर के अभाव में मन और आत्मा की कल्पना भी संभव नहीं है।

यांत्रिक बनाम यौगिक सभ्यता

पश्चिमी सभ्यता यांत्रिक सभ्यता है। सम्पत्ति की वहाँ प्रचुरता है, वैभव और विलास की अधिकता है। मैंने संसार के लगभग सभी देशों को निकट से देखा है। लाखों की संख्या में मुस्लिम, ईसाई, दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका में शिष्य हैं। मैं जो कुछ बोलता हूँ, प्रमाण के साथ बोलता हूँ। आज पश्चिमी देशों में एक वर्ग ऐसा भी पैदा हो रहा है, जो आधुनिक सभ्यता से वैसा ही डरता है, जैसे हम मृत्यु या कैंसर से। वहाँ तकनीकी ज्ञान का तो अपरिमित विकास हो रहा है, किन्तु उसी अनुपात में व्यक्तित्व के दूसरे पक्षों का विकास नहीं हो रहा है। हमारा व्यक्तित्व न तो शरीर है और न बुद्धि। वह दोनों का सम्मिश्रित रूप है। अत: दोनों का विकास होना आवश्यक है। इसी कारण पश्चिम के अनेक विद्वान् आधुनिक सभ्यता के विकास को संदेह की दृष्टि से देख रहे हैं। सिगमंड फ्रायड ने भी चेतावनी दी थी कि हर सभ्यता की अपनी कुछ खराबियाँ होती हैं। इस यांत्रिक सभ्यता की भी अपनी सीमायें हैं। इसने असंतोष, कुण्ठा, रक्तचाप, अनिद्रा आदि रोगों को जन्म दिया है।

किसी भी सभ्यता के लिए यदि पदार्थ की आवश्यकता होती है, तो उसे भोगने वाले व्यक्ति की भी जरूरत होती है। यह सीधा-सीधा माँग और पूर्ति का सिद्धान्त है। पश्चिमी सभ्यता ने भोग-विलास-वैभव की साम्रगी तो दी, पर उसी के अभिशापों ने मनुष्य के शरीर को रुग्ण बना दिया। सामने आ रही नई पीढ़ी का कथन है कि जब मन में शान्ति नहीं, शरीर स्वस्थ नहीं, तो आधुनिक सभ्यता के इन उपहारों का क्या होगा? हम उस संपत्ति को लेकर क्या करेंगे जिससे हम स्वयं पागल हो जायें या हमारा पुत्र पागल हो जाए अथवा पत्नी तलाक देकर दूसरी जगह चली जाये?

हमारी अतीत की संस्कृति इस दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध थी। हो सकता है यह बात आप न जानते हों, हम जानते हैं, हम देश-देश छानते हैं। इसलिए भी जानते हैं कि हमारे देश ने एक अत्यन्त उच्च और विकसित सभ्यता देखी थी और उसके संतुलित भोग के लिए योग के सिद्धान्तों का निर्धारण किया था। पश्चिमी संसार आज योग की दिशा में बढ़ रहा है। इसलिए कि वह अपनी विकसित सभ्यता के साथ समन्वय स्थापित कर सके। जबकि हमारे यहाँ इस प्रकार के प्रयत्न हजारों वर्ष पहले हो चुके हैं, व्यवस्थायें बनायी जा चुकी हैं।

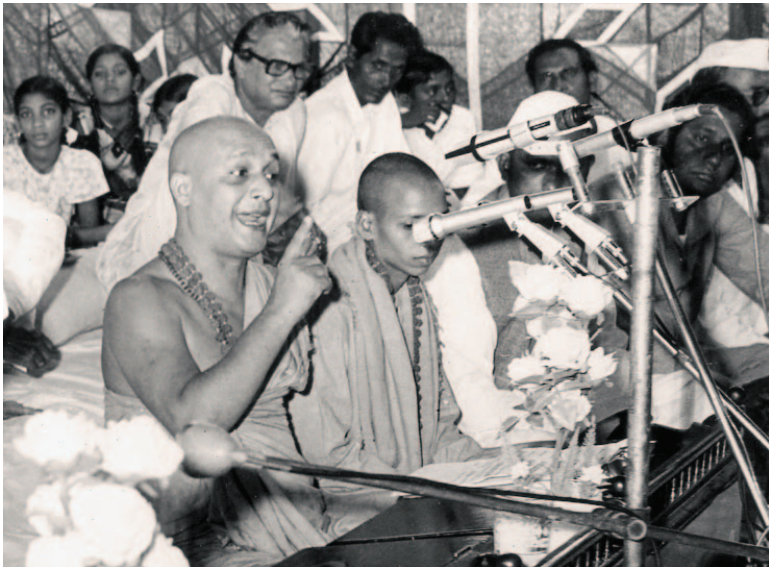

पश्चिमी देशों में आज योग को विज्ञान का विषय बना लिया गया है। उस पर हजारों तरह के प्रयोग हो रहे हैं। इन प्रयोगों से मैं किसी-न-किसी रूप में सम्बद्ध हूँ। संसार की अनेकों योग समितियों का मैं सदस्य हूँ। कहीं किसी एक रूप में सम्बन्धित हूँ, तो कहीं किसी दूसरे रूप में। कुछ समय पहले जर्मनी से हमारे पास योग के एक पक्ष पर किये गये प्रयोग का विवरण आया है, जिसमें कई सौ आदमियों को केवल दस मिनट बैठाकर उन्हें चुपचाप श्वास पर ध्यान करने को कहा गया और इस बीच उनके रक्तचाप और साँस द्वारा खर्च की जाने वाली प्राणवायु आदि का पक्का हिसाब रखा गया। उन्हें इस प्रयोग के आश्चर्यचकित करने वाले परिणाम मिले हैं। इस अल्प अवधि में ही उनका रक्तचाप सामान्य हो जाता है तथा ऑक्सीजन की खपत भी कम हो जाती है। मानसिक शान्ति स्थापित हो जाती है तथा और भी चौंकाने वाले निष्कर्ष निकलते हैं। इसी तरह सिद्धासन के द्वारा भी रक्तचाप कम हो जाता है तथा इसके द्वारा आत्म नियोजन और परिवार नियोजन का कार्य भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इस आसन का सीधा सम्बन्ध काम ग्रंथि और शुक्र ग्रंथि से है। इस तरह के हजारों प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि योग हमारी वैज्ञानिक पूँजी है। योग का हमें अधिकाधिक प्रयोग करना चाहिए।

चेतना का उत्थान

वैज्ञानिक प्रयोगों से यह भी सिद्ध हो चुका है कि 24 घण्टे हमारी चेतना शक्ति एक समान नहीं रहती। कभी कम रहती है और कभी ज्यादा। नींद में यह एक सामान्य

स्तर से भी बहुत अधिक नीचे चली जाती है और प्रात:काल ब्रह्म-मुहूर्त में यह अत्यन्त संवेदनशील होती है। यही कारण है कि प्रात:काल का समय पढ़ने-लिखने या योग अभ्यास के लिए सबसे अधिक उपयुक्त माना जाता है। योगनिद्रा के द्वारा चेतना की यह अत्यन्त सक्रिय अवस्था जब चाहे तब निर्मित की जा सकती है और इस स्थिति में जीवन में जो भी संस्कार डाले जाते हैं, वे स्थायी महत्त्व के हो जाते हैं। उन्हें ब्रह्मा की लकीर भी मिटा नहीं सकती। इस सर्वाधिक ग्रहणशील अवस्था में आत्म निर्देशन के द्वारा पूरी जिन्दगी को बदला जा सकता है।

इस दुनिया में सबसे अधिक कठिन कार्य होता है अपने को बदलना। आज विचित्रता यह है कि हर व्यक्ति अपने को बदलना चाहता है, क्योंकि कोई भी अपने से प्रसन्न नहीं है। योगनिद्रा ही एक ऐसी स्थिति है, जहाँ केवल विचार ही नहीं, चेतना को भी बदला जा सकता है। बौद्धिक विचार तो मन की एक सामान्य स्थिति है। इसके बदलने से कुछ नहीं होता। इस परिवर्तन का मूल क्रम चेतना से प्रारम्भ होता है। योग निद्रा में चेतना को ही रेगुलेट किया जाता है। यह एक युक्ति है। यह सत्य है कि जो कुछ लिया जा सकता है, उसे छोड़ा भी जा सकता है, पर यह कार्य चेतना के द्वारा ही होगा। अत: इस चेतना को पकड़ में लाना चाहिए। यह चेतना न तो विचार है, न तो स्मृति, यह अपने अस्तित्व की, 'मैं हूँ' की चेतना है। यह अतिशय सूक्ष्म है, हवा सदृश है और हवा को पकड़ना निश्चित रूप से कठिन होता है न?

इसे पकड़ने के लिए योग में और भी कई तरीके हैं, जैसे जप और ध्यान। यह जरूरी नहीं कि यह कार्य दो या चार या दस दिन में ही सम्पन्न हो जाए, कई बरस भी लग सकते हैं, पर पकड़ मिलेगी जरूर। जिस दिन मिलेगी, उसी दिन इस जीवन का सारा नियंत्रण तत्त्व भी मिल जाएगा। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं – कवि, कलाकार, संगीतज्ञ, अनुसंधान कर्त्ता, न्यूटन और आइन्सटीन जैसे वैज्ञानिक – सभी ने चेतना की इस पकड़ को प्राप्त किया है। चेतना के माध्यम से ही कोई व्यक्ति महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली बनता है। योग, चेतना को नियंत्रित करने का सरल तरीका है।

कुछ लोगों को भ्रान्ति हो सकती है कि योग भी कोई धर्म है। किन्तु यह कोई धर्म नहीं, धर्म की नींव है और उससे बहुत ऊँचा है। इसे संसार के सभी धर्म के लोग अपना रहे हैं। योग को अपनाने से किसी का धर्म बिगड़ता नहीं है। जो अमृत विष बन जाए वह अमृत नहीं हो सकता। योग मनुष्य की हर प्रकार की संकीर्णता को नष्ट करने वाला वैज्ञानिक साधन है। उससे व्यक्ति के जीवन और धर्म, दोनों ही समृद्ध बनते हैं। योग आने वाले कल की संस्कृति का नाम है। यह वैज्ञानिक संस्कृति है। इसका भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है।

– इस्पात योग सम्मेलन, भिलाई, 1977

योग का प्रादुर्भाव और हठयोग की भूमिका

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

जुलाई 2021 में स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती द्वारा युवा योग मित्र मण्डल के सदस्यों को दिए गए योग शिक्षा सत्र का पहला सत्संग

युवा योग मित्र मण्डल के सदस्यों का स्वागत है। बहुत वर्षों से प्रतीक्षा थी कि तुम सबको योग विद्या और योग संस्कृति के बारे में बतला सकें। योग का आरम्भ कब हुआ, योग का प्रयोजन क्या है, किन-किन लोगों ने इसके विकास में अपना योगदान दिया है, आधुनिक युग में योग की क्या आवश्यकता है और कौन-कौन से अभ्यास उपयुक्त एवं उचित हैं, ऐसे अनेक बिन्दुओं पर हमलोग चर्चा करेंगे। आज का विषय है – योग का प्रादुर्भाव कैसे हुआ?

सबसे पहले योग की शिक्षा भगवान शिव ने माता पार्वती को प्रदान की थी, और जिस योग की शिक्षा उन्होंने माता पार्वती को दी थी, उसका नाम था पाशुपत योग। शिवजी का एक नाम पशुपति भी है और लोग अर्थ लगाते हैं संसार के पशुओं का स्वामी होना। तंत्र और योग दर्शन के अनुसार इसका तात्पर्य हमारे भीतर के

पशुओं से है। सामान्य भाषा में इसे राक्षस, आतंकवादी, घमंडी या व्यभिचारी जैसा व्यवहार कहते हैं और योग की भाषा में इसे कहते हैं तामसिक व्यवहार। जो विचार और कर्म तमोगुण से युक्त हो वह तामसिक है, और उस पर जिसका नियंत्रण हो वह है पशुपति।

भगवान शिव के अनुसार योग एक ऐसा माध्यम है जिससे मनुष्य अपने दु:खों से छुटकारा पा सकता है। माता पार्वती ने शिवजी से पूछा था कि संसार में दु:ख क्यों है और मनुष्य सुखी, संतुष्ट और स्वस्थ कैसे हो सकता है। तब इस प्रश्न के उत्तर में भगवान शिव माता पार्वती को तंत्र और योग की शिक्षा देते हैं।

त्रिविध दु:ख

दु:ख से निवृत्ति योग का सीधा प्रयोजन दिखलाई देता है। दु:ख शारीरिक भी होता है, मानसिक और भावनात्मक भी। हमलोग अपने जीवन में पारिवारिक दु:ख भी अनुभव करते हैं, सामाजिक दु:ख भी अनुभव करते हैं, व्यक्तिगत दु:ख भी अनुभव करते हैं, लेकिन शास्त्रों ने दु:ख को तीन भागों में बाँटा है – आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक।

आधिदैविक का मतलब होता है जो भगवान के हाथ में या हमारे भाग्य में है, जिसको कोई बदल नहीं सकता है। भूकम्प आया, बिल्डिंग गिर गई, चोट लग गई या मृत्यु हो गई, यह मनुष्य के नियंत्रण के बाहर की चीज है। ज्वालामुखी फट जाता है, सैकड़ों लोग मरते हैं। बाढ़ आती है, बादल फटता है, सैकड़ों मरते हैं। इन सब घटनाओं पर मनुष्य का अपना कोई नियंत्रण नहीं है, बल्कि ये भगवान के प्रकोप से उत्पन्न होती हैं और दु:ख के कारक बनती हैं। इस प्रकार के दु:ख को आधिदैविक कहते हैं।

दूसरे प्रकार का दु:ख है आधिभौतिक जो सामाजिक परिस्थिति और परिवेश के कारण होता है। अब काम पर जाते हैं, वहाँ तनाव, चिन्ता और परेशानी होती है, भावनात्मक ठेस पहुँचती है। इस प्रकार की मानवकृत चीजें हमें प्रभावित करती हैं। हमारे मुहल्ला में झगड़ा या दंगा हो जाता है, हम सबको घर के अन्दर आना पड़ता है, वह आधिभौतिक दु:ख है। आदमी बीमार पड़ता है, बुखार होता है, सर्दी होती है, जुकाम होता है, दमा है, वह आधिभौतिक दु:ख है, जो बाहरी परिस्थितियों से हो रहा है। उदाहरण के लिए, भोजन अब स्वाद के लिये होता है, स्वास्थ्य के लिये नहीं। पहले भोजन स्वास्थ्य के लिये होता था, स्वाद के लिये कम, लेकिन अब पूरा चरित्र ही बदल गया है। जिसे हमलोग फास्ट फूड कहते हैं, जो बड़े शहरों में मिलता है, देश-विदेश में सब जगह, वह स्वाद पर आश्रित आहार है, और उसके पीछे लोग आकर्षित होते हैं। ये सब बाहर की परिस्थितियाँ जो अपने लिये हानिकारक होती हैं, दु:ख उत्पन्न करती हैं, वे आधिभौतिक कहलाती हैं।

तीसरा है आध्यात्मिक दु:ख, जो भीतर से उत्पन्न होता है, अपने विचार, कर्म, व्यवहार, संस्कार के कारण, अपने परिवेश और परिस्थिति के कारण। शास्त्रों ने दु:खों को तीन वर्गों में बाँटा है – देवताकृत, परिस्थितिकृत और स्वकृत। इनसे मुक्ति का उपाय माता पार्वती भगवान शिव से पूछती हैं और शिवजी उन्हें मुक्ति का उपाय बतलाते हैं।

हठयोग की परम्परा

जब शिवजी माता पार्वती को योग की शिक्षा दे रहे थे तो परम्परा कहती है कि समीप की नदी में एक मछली ने उनकी शिक्षा सुन ली। अब खैर, यह तो कहानी-किस्सा हो सकता है, लेकिन अगर वास्तविकता में आयें तो मालूम पड़ता है कि किसी ने छुपकर शिवजी की शिक्षा को सुना है। जब शिवजी को मालूम पड़ा कि कोई छुपकर मेरी बात को सुन रहा है तो उन्होंने उसको सामने बुलाया। अब शिवजी को कैसे मालूम पड़ा कि कोई सुन रहा है? क्योंकि उन्होंने माता पार्वती से कहा था कि तुम बीच में हुँकार भरते जाना, हाँ-हाँ कहते जाना। लेकिन माता पार्वती सो गयीं और हुँकार भरने वाला कोई और था, जिससे शिवजी को मालूम पड़ गया कि पार्वती सो गई हैं, किसी दूसरे की आवाज है। उन्होंने पूछा, 'कौन है? बाहर आओ!' तो मत्स्य जाति का एक आदमी सामने आता है। शिवजी उससे पूछते हैं, 'तुमने सब सुना?' वह कहता है, 'कुछ तो सुना हूँ जरूर, और बड़ा आनन्द आया है।' शिवजी कहते हैं, 'ठीक है, तुम मेरे पहले चेले होते हो। जो तुम जानते हो उसे संसार में जाकर सिखाओ', और उस शिष्य का नाम हुआ मत्स्येन्द्रनाथ, जो गोरखनाथ के गुरु बने।

हठयोग की मूल परम्परा मत्स्येन्द्रनाथ से आरम्भ होती है। आज भी अपने समाज में जो नाथ सम्प्रदाय के साधु हैं वे अपने जीवन काल में हठयोग को ही सिद्ध करते हैं। यह उन नाथपंथी साधु-संन्यासियों के जीवन का प्रयोजन होता है जो मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ की परम्परा से जुड़े हैं। परम्परा तो बहुत पहले से चली है, लेकिन नाम दो का ही आता है – मत्स्येन्द्रनाथ और उनके

चेले गोरखनाथ, क्योंकि ये दो ही ऐसे महात्मा रहे जिन्होंने योग को पूर्णरूप से अपने जीवन में सिद्ध किया। उनके बाद और भी आचार्य हुये हैं, लेकिन उस स्तर के नहीं हो पाये, जिनमें उस प्रकार का गुरुतत्त्व जीवन्त और जागृत था।

नाथ सम्प्रदाय एक ऐसी परम्परा है जिसमें मूल रूप से हठयोग प्रधान शिक्षा देते हैं और हठयोग को सिद्ध करते हैं। और मत्स्येन्द्रनाथ भगवान शिव के पहले मनुष्य चेला बने। उसके बाद ऋषि लोग आते हैं, वैदिक काल आरम्भ होता है। ऋषि भी इस पाशुपत योग और इस हठयोग से अवगत हैं जिसकी धारा को मत्स्येन्द्रनाथ ने प्रवाहित किया। अब ऋषि लोग योग का अध्ययन आरम्भ करते हैं। हठयोग में भी कुछ लोग आते हैं, अध्ययन करते हैं और संशोधन करते हैं। इनमें दो-तीन प्रधान हैं। एक हैं महर्षि घेरण्ड, जिन्होंने हठयोग को एक सिद्धि के लिये नहीं, बल्कि अपने आपको ठीक रखने के लिये बतलाया। मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ आदि हठयोग का अभ्यास सिद्धि के लिये करते हैं, लेकिन महर्षि घेरण्ड ने कहा कि यह शरीर एक घट की तरह है, और इस शरीर में जिस योग को कर सकें वह कहलाता है घटस्थ योग। महर्षि घेरण्ड सिद्धि के प्रयोजन को हटा देते हैं, मुक्ति के प्रयोजन को हटा देते हैं और कहते हैं कि अपनी ऊर्जा को ठीक रखो।

ऋषि परम्परा ने अपने लिये हठयोग को घेरण्ड संहिता के अनुसार सिद्ध किया, जिसमें अन्नमय, प्राणमय और मनोमय, इन तीन कोषों की बात होती है। उसी समय एक गृहस्थ संत पैदा हुये जिन्होंने योग को आत्मसात् किया, उनका नाम था स्वात्माराम। उन्होंने भी हठयोग पर साहित्य लिखा – हठयोग प्रदीपिका। हठयोग प्रदीपिका साधुओं के लिये नहीं, बल्कि गृहस्थों के लिये थी।

मूल हठयोग पाशुपत योग से निकला और महर्षि मत्स्येन्द्रनाथ ने संसार में इसका प्रचार किया। फिर कालान्तर में इसी मूल हठयोग के दो विभाजन हुए, एक साधुओं, ऋषि-मुनियों, तपस्वियों के लिये जो अध्यात्ममुखी थे, और दूसरा, समाज में रहने वाले गृहस्थों के लिये जो समाजमुखी थे। यह बात बहुत कम लोग जानते हैं। अभी भारत में या विदेश में जो हठयोग की शिक्षा दी जा रही है वह स्वात्माराम की हठयोग प्रदीपिका के अनुसार है। बिहार योग विद्यालय ने घेरण्ड संहिता को प्रकाशित किया। उसमें साधुओं के लिये जो मार्ग प्रशस्त किया गया है और हठयोग प्रदीपिका में गृहस्थों के लिये जो मार्ग प्रशस्त किया गया है, दोनों में स्पष्ट अन्तर दिखलाई देता है।

पाशुपत योग में हठयोग को हठयोग नहीं कहा गया है, बल्कि स्पर्श योग कहा गया है, क्योंकि इन्द्रियों के द्वारा हमें अपने जीवन और संसार का अनुभव होता है। जब इन्द्रियाँ विषय-वस्तुओं का स्पर्श करेंगी तभी जाकर उनका बोध हमें होगा। शरीर से जो अनुभव हमें हो रहा है उसको कहा गया है स्पर्श। जमीन पर बैठे हैं, वह भी स्पर्श का अनुभव है। कपड़े पहने हैं, स्पर्श का अनुभव है। जो हम अनुभव

कर रहे हैं वह स्पर्श के कारण ही अनुभव कर रहे हैं। इसीलिये हठयोग को पाशुपत योग में स्पर्श योग कहा गया। यह इसका सबसे प्राचीन नाम है। फिर मत्स्येन्द्रनाथ के समय यह हठयोग बना। महर्षि घेरण्ड के समय यह हठयोग था, स्वात्माराम के समय हठयोग था और आज के समय भी हठयोग है।

आसनों की संख्या

अब हठयोग के अंगों की चर्चा करते हैं। पहला है आसन। इस विषय पर सब कोई अलग-अलग बात कहते हैं। कोई कहता है कि हठयोग में चौरासी लाख आसन हैं। अगर पूछो कि इतने सारे क्यों हैं तो कहते हैं कि हर योनि के लिये एक आसन है। इस प्रकृति में एक कीटाणु से लेकर मनुष्य शरीर तक प्राप्त करने में हमें चौरासी लाख योनियों से गुजरना पड़ता है, इसलिये चौरासी लाख आसन हैं। अब कहने को तो कह दिया चौरासी लाख, पर इनका वर्णन कहाँ लिखा है? किसने इनका अभ्यास किया है, कोई नहीं जानता। चौरासी लाख आसन हैं, इस सिद्धान्त का सम्बन्ध एक अवस्था के साथ है। जीवन एक स्थिति है, उसी तरह आसन भी एक स्थिति है, अवस्था है। तुम एक कीटाणु हो तो वह भी एक स्थिति है जीवन की, तुम मनुष्य हो वह भी एक स्थिति है जीवन की, तुम चिड़िया हो वह भी एक स्थिति है जीवन की। चौरासी लाख योनियाँ तो चौरासी लाख आसन, वह एक दर्शन हुआ। अगर हर योनि अनुभव की एक अवस्था है तो ठीक है, वह भी आसन है। आखिर आसन का मतलब ही तो होता है अवस्था – *स्थिरसुखमासनम्* – जिसमें स्थिर हो, जिसमें सुखपूर्वक हो वह आसन है। अगर जीवन में स्थिरता और सुख

है तो वह भी आसन है। केवल एक शरीर से अपने आपको एक अवस्था में लाना आसन नहीं है, एक जीवन अवस्था को भी आसन कहते हैं।

कुछ अन्य लोग कहते हैं कि 72 हजार योग आसन हैं। यह संख्या इसलिये कहते हैं कि हमारे शरीर में 72 हजार प्राण-वाहक नाड़ियाँ हैं और मान्यता है कि हर एक नाड़ी को एक आसन से जागृत किया जाता है। लेकिन इसका भी कहीं पर कोई संकलन नहीं, कोई नाम नहीं। वास्तव में कितने आसन हैं?

अगर तुम प्राचीन से प्राचीन और आधुनिक से आधुनिक, सभी ग्रन्थों के आसनों का संकलन करोगे तो मूल आसन एक-डेढ़ सौ से ज्यादा नहीं हैं, बल्कि उससे कम भी हो सकते हैं। पूरी हठयोग प्रदीपिका में मात्र 15 आसनों का वर्णन है जो गृहस्थों के लिये हैं। पूरी घेरण्ड संहिता में करीब 32 आसनों का वर्णन है। इसमें बहुतों की पुनरावृत्ति भी है, अलग-अलग तो नहीं हैं। 80-90 प्रतिशत तो समान हैं, जो इसमें है वह उसमें भी है। याज्ञवल्क्य संहिता, शिव संहिता, दत्तात्रेय संहिता – ये सब अलग-अलग संहिताएँ हैं जिनमें योग की, योगासनों की चर्चा की गई है।

आसनों का वर्गीकरण

आसनों को तीन समूहों में बाँटा गया है – पहला समूह, जो शारीरिक और प्राणिक लाभ प्रदान करते हैं, दूसरा समूह जो मानसिक लाभ प्रदान करते हैं और तीसरा समूह जो आध्यात्मिक लाभ प्रदान करते हैं। शारीरिक लाभ वाले आसनों के बारे में साहित्यों में भी लिखा है कि ये आसन करोगे तो ये बीमारी दूर हो जायेगी, वो आसन करोगे तो वो बीमारी दूर हो जायेगी। शुरू से ही हठयोग प्रदीपिका में या घेरण्ड संहिता में आसनों के साथ बीमारी का नाम जुड़ा हुआ है। ऐसा विवरण दिया गया है जिससे यह भी साबित होता है कि शुरू से हमारे ऋषि-मुनि भी स्वास्थ्य को सामने रखकर लोगों को योगासन सिखाते थे। स्वास्थ्य सम्बन्धी आसनों का यह पहला समूह शरीर के हर तंत्र-तंत्रिका को व्यवस्थित करने में सहायता प्रदान करता है। चाहे जैसा भी सर्दी-जुकाम हो, अगर फेफड़े मजबूत रहें तो कुछ नहीं होगा। चाहे जिस प्रकार का उच्च-रक्तचाप या हृदय रोग हो, अगर हृदय स्वस्थ रहेगा तो कुछ नहीं होगा। अगर हम अपने तंत्र-तंत्रिकाओं को आसनों के द्वारा व्यवस्थित कर सकें तो बीमारी नहीं होगी और जो है वह चली जायेगी। यह हुआ शारीरिक लाभ प्रदान करने वाले आसनों का प्रयोजन।

मानसिक लाभ मुख्य रूप से तनाव सम्बन्धी है। पातंजल योग दर्शन में चंचल चित्तवृत्ति को रोकने पर जोर दिया गया है, मतलब अपने मन-मस्तिष्क में जो भगदड़ मची है उसको रोकना, चिन्ता, परेशानी, झंझट, तनाव आदि को मैनेज करना। इसके लिये भी आसनों का उपयोग किया जाता है, क्योंकि आसनों से जब शरीर में रासायनिक परिवर्तन होते हैं तो उसका असर मस्तिष्क पर, फिर मन और मानसिक

व्यवहार पर पड़ता है। कुछ लोगों को बहुत जल्दी गुस्सा आता है। इसका मतलब होता है कि शरीर में एड्रिनलिन हॉर्मोन का उत्पादन फटाफट होता है, और जैसे ही उस हॉर्मोन का उत्पादन होता है आदमी एकदम उबल पड़ता है।

हमारे गुरुजी की भी वही स्थिति थी। अब इसको कैसे संभालें? स्वामी शिवानन्द जी ने एक उपाय बतलाया, शशांकासन करो, 15 मिनट सबेरे, 15 मिनट दोपहर, 15 मिनट शाम। शशांकासन करने से एड्रिनलिन हॉर्मोन का उत्पादन नियंत्रण में आ गया। जब वह नियंत्रित हो गया तो क्रोध भी अपने आप कम हो गया। यह आसनों का दूसरा समूह हुआ जो शरीर के रसायनों पर सीधा असर करते हैं, जिसका प्रभाव फिर मन और मस्तिष्क पर तुरन्त पड़ता है।

आसनों का तीसरा वर्ग आध्यात्मिक प्रयोजन से सम्बन्धित है। इन आसनों से हम अपने चक्रों को, कुण्डलिनी शक्ति आदि को उठाने का, जगाने का प्रयास कर सकते हैं। आसनों के ये तीन समूह होते हैं। मुख्य रूप से पहले दो समूहों को ही समाज में सिखाया जाता है जिससे हम अपने शरीर और मन को ठीक-ठाक रख सकें। फिर यदि कोई पात्र मिलता है जो इस अनुभव को अपने जीवन में गहराई से आत्मसात् करता है, तो वह तीसरे समूह के लिये अधिकारी बनता है।

हठयोग का मूल अर्थ और प्रयोजन

अब रही बात कि इस योग का नाम हठयोग क्यों पड़ा। बहुत लोग तो अर्थ लगाते हैं कि हठयोग का मतलब अपने से जबरदस्ती करना। हठ करके हम बैठ गये कि तीन घंटा नहीं उठेंगे, चाहे पैर सो जाए या कुछ भी हो जाए। बहुत लोगों का ऐसा भी विचार रहा कि हठयोग का मतलब हठपूर्वक अपने शरीर को एक अवस्था में लाना है। हठयोग में समझाया है कि हं और ठं, ये दो मंत्र हैं। बहुत इसको हं और क्षं भी बोलते हैं। इड़ा और पिंगला, इन दो प्रमुख नाड़ियों के मंत्र हैं, और इन्हीं इड़ा

और पिंगला नाड़ी को जगाने, संतुलित करने और उपयोग करने के लिये हठयोग का अभ्यास होता है। हं पिंगला नाड़ी है और ठं या क्षं इड़ा नाड़ी है। इस तरह हठयोग का असली प्रयोजन इसके नाम में ही बतलाया गया है।

बिहार योग पद्धति

आज सभी हठयोग का प्रचार करते हैं, हठयोग भी नहीं, केवल आसन, और आसन को ही लोग योग कहते हैं। अगर आज समाज में पूछते हो कि योग क्या है तो आसन ही योग है। मैं उस योग की बात नहीं कर रहा हूँ।

बिहार योग पद्धति हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानन्द जी की योग सम्बन्धी मूल विचारधारा रही है जिसे हमारे गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी ने मुंगेर में मूर्त्तरूप दिया। उनकी इच्छा थी कि मुंगेर में जो योग सिखाया जाता है वह बिहार योग पद्धति के नाम से जाना जाये। बिहार के लिये यह एक सम्मान और गौरव की बात है, और श्री स्वामीजी का राज्य को प्रसाद है।

स्वामी शिवानन्द जी का मूल चिंतन था कि इस युग में ऐसे योग का अभ्यास मनुष्य के बौद्धिक विकास, भावनात्मक संतुलन और रचनात्मक कर्मों के लिये प्रासंगिक बने। स्वामी शिवानन्द जी ने अपने शिष्यों से कहा कि तुम योग सिखाओ और इन्हीं तीन उद्देश्यों को लेकर चलो – बुद्धि, भावना और कर्म।

स्वामी शिवानन्द जी के शिष्य, स्वामी विष्णुदेवानन्द जी ने हठयोग को चुना। स्वामी सच्चिदानन्द जी ने हठयोग और भक्तियोग का चुनाव किया। दक्षिण अफ्रीका में स्वामी सहजानन्द जी ने हठयोग और ज्ञानयोग पर जोर दिया। इस प्रकार हरेक शिष्य ने एक या दो योग को लेकर अपना जीवन व्यतीत किया।

लेकिन स्वामी सत्यानन्द जी ने कहा कि गुरुजी का कहना है कि बुद्धि, भावना और कर्म, तीनों का समावेश होना है। इसके लिये उन्होंने योग चक्र का निर्माण

किया, जिसके साधनात्मक पक्ष में आता है हठयोग, राजयोग और क्रियायोग विधि, जिसके द्वारा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक साधना की जाती है। ये साधने के लिये हैं, इनको सिद्ध करना है। जैसे हठयोग में आसन- प्राणायाम आदि को सिद्ध करते हैं, उसके बाद राजयोग मन के लिये है, उसको सिद्ध करना है। अपनी चंचलता और उग्रता को कम करना है, रचनात्मकता और संतुलन को बढ़ाना है। आध्यात्मिक साधना के लिये क्रिया योग है, चक्रों को जगा सकते हैं, कुण्डलिनी को जगा सकते हैं। इस तरह शरीर, मन और आत्मा के लिए हठयोग, राजयोग और क्रियायोग, ये तीन साधन के अभ्यास हो गये जिनको हमें सिद्ध करना है।

फिर तीन योग हैं व्यवहार के – कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग। कर्मयोग का अभ्यास ऐसे तरीके से होना है कि व्यक्ति कर्मयोग के लक्ष्य के प्रति सजग रहे, भक्तियोग भी इस तरीके से कि वह केवल एक कर्म-काण्ड का रूप न ले, और ज्ञानयोग भी इस तरीके से कि व्यक्ति केवल प्रश्न पूछने का आदी न बने, बल्कि उसकी बुद्धि में कुछ समझ आए। व्यवहार के लिए कर्मयोग, भक्तियोग एवं ज्ञानयोग और साधना के लिए हठयोग, राजयोग और क्रियायोग – इस योग चक्र का निर्माण स्वामीजी ने मुंगेर में ही किया ताकि इसके माध्यम से हम स्वामी शिवानन्द जी की मूल शिक्षा को सामने ला सकें।

उसके बाद फिर मुंगेर में योग के विकास का कार्यक्रम आरम्भ होता है। जब तक स्वामी शिवानन्द जी नहीं उभरे थे, तब तक योग मात्र तपस्वियों के लिये एक साधना समझी जाती थी। समाज में लोग कहते थे कि योग मोक्ष का साधन है, इससे हमको कोई लेना-देना नहीं। बचपन में हमें मुंगेर में लोगों ने कहा है कि 'योग तो साधुओं की चीज है, इससे हम गृहस्थों को क्या लेना-देना? हमें तो संसार में रहना है, हमें मोक्ष नहीं चाहिये।' ऐसी मान्यता थी पहले। स्वामी विवेकानन्द जी तक कुछ साधु योगाभ्यास करते थे और विवेकानन्द जी ने भी योग का प्रचार नहीं किया, उन्होंने वेदान्त का प्रचार किया।

योग सिखाने की परम्परा स्वामी शिवानन्द जी से शुरू होती है। जब स्वामी शिवानन्द जी समाज में योग का प्रचार करने लगे तब दूसरे साधु लोग उनको स्वामी प्रोपागेंडानन्द कहते थे कि ये अपने योग का प्रोपागेंडा कर रहे हैं। लेकिन स्वामी शिवानन्द जी के शिष्य संसार में पहली पीढ़ी के योग शिक्षक बने। यह उनका योगदान रहा है।

जिसे हमलोग बिहार योग पद्धति कहते हैं वह आज विश्व के सभी योगों में श्रेष्ठ पद्धति है। 'आसन प्राणायाम मुद्रा बंध' आसनों की पहली किताब थी जिसका प्रकाशन मुंगेर से हुआ। स्वामी सत्यानन्द जी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने प्राणायाम का वर्गीकरण किया। नहीं तो पहले लोग कहते थे प्राणायाम करने से आदमी पागल हो जाता है, हम नहीं करेंगे। भ्रांतियाँ थीं! मुद्राएँ कितनी हैं, बंध कितने हैं,

उसका वर्गीकरण श्री स्वामीजी ने किया। योग में ध्यान की कौन-सी पद्धतियाँ हैं, प्रत्याहार में क्या है, धारणा में क्या है, सब वर्गीकरण श्री स्वामीजी ने किया। योग संस्कृति के विकास में बिना अहंकार के कहा जा सकता है कि मुंगेर का काम अद्वितीय और अतुलनीय है।

यहाँ जो हुआ सेवा भाव से हुआ है। हमारे गुरुजी के मन में अपने गुरु के प्रति सेवा भाव था। 'गुरुजी के लिये मैं सबसे उत्तम से उत्तम कार्य करूँगा' और इस भाव से प्रेरित होकर उन्होंने सब किया। जब हम आये हमारे मन में अपने गुरु के प्रति सेवा भाव ही था और इस योग अन्दोलन का उत्तरोत्तर विकास हुआ। अब आगे की पीढ़ी की जिम्मेदारी है।

आज हमने योग की केवल एक भूमिका बनायी है, और बतलाया है कि हठयोग क्या है, और स्वामी शिवानन्द जी तथा स्वामी सत्यानन्द जी के द्वारा किस प्रकार योग को एकत्रित किया गया। छ: योगों का समन्वय केवल स्वामी सत्यानन्द जी ने किया, और उसी को हमलोग कहते हैं बिहार योग, क्योंकि यह बिहार की देन है अपनी संस्कृति को, अपने समाज को। साथ ही यह गुरुजी की देन है अपने गुरु के प्रति, गुरु-ऋण से मुक्ति के लिये, क्योंकि वही उनका आदेश था – योग का द्वारे-द्वारे तीरे-तीरे प्रचार करो।

– 15 जुलाई 2021, गंगा दर्शन

धारणा का चिकित्सकीय उपयोग

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

क्या कभी आपने एक उत्तेजित और अस्थिर मन की तुलना वैसे मन से की है जो एकाग्र और संकेन्द्रित है? एक पेण्डुलम की कल्पना करें जो जोर-जोर से डोल रहा हो और फिर वह धीरे-धीरे हिलना-डुलना बन्द कर केन्द्र में अवस्थित हो जाता है और तब उसकी कुछ भी गति नहीं रह जाती। जब पेण्डुलम घूमता रहता है तब क्रिया-कलाप तीव्र रहता है। वैसे ही एक उत्तेजित और अस्थिर मन सतत् गति में रहता है। जब पेण्डुलम रुक जाता है तब स्थिरता आ जाती है। शान्त मन भी स्थिरता और शून्यता का अनुभव करता है। शून्यता की वह स्थिति तुरीयावस्था के नाम से जानी जाती है जहाँ लोकातीत ज्ञान की वर्षा होती है और अन्तर्ज्योति प्रगट होती है।

धारणा मात्र इसलिए महत्त्वपूर्ण योगाभ्यास नहीं है कि यह अनुभव कराता है, बल्कि इसलिए भी कि यह साधक को उसे प्राप्त करने के लिए तैयार करता है। हालाँकि लोकातीत अनुभूतियाँ शरीर के परे होती हैं, फिर भी उनका प्रभाव शरीर पर अत्यन्त सटीक ढ़ंग से पड़ता है। जैसे-जैसे यह अनुभव सभी स्तरों से होकर नीचे छन कर जाता है, इस अनुभव से शरीर के विभिन्न अंग प्रभावित होते हैं। इस प्रकार धारणा का अभ्यास हमारे अस्तित्व के सभी स्तरों – शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक को भी प्रभावित करता है। यह सभी स्तरों पर स्थित अवरोधों को दूर करता है, जिससे तुरीया चेतना की अनुभूति प्रगट हो सके। और इस कारण इसके अभ्यास से हम भी सुख-शान्ति, सक्रियता, आत्म-विश्वास और अन्दर से एक असीम शक्ति का अनुभव करते हैं।

आध्यात्मिक उत्कर्ष एवं सम्पूर्ण सुख-शान्ति के लिए धारणा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस अर्थ में तो हम धारणा को शारीरिक और मानसिक चिकित्सा के रूप में भी समझ सकते हैं। अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया में धारणा का उपयोग कैंसर और एड्स जैसी असाध्य बीमारियों में चिकित्सा के लिए सफलतापूर्वक किया जा चुका है। ऐसे रोगियों को कहा गया था कि वे मानस दर्शन की प्रक्रिया से अपने मन को एकाग्र करके देखें कि व्याधिग्रस्त कोशिकाओं को स्वस्थ कोशिकाएँ मारकर उनका स्थान स्वयं ले रही हैं, ठीक जैसे एक सेना दूसरी सेना को नष्ट कर उसका स्थान ले लेती है।

धारणा मानसिक स्तर पर भी रोग निवारक है, क्योंकि यह मन को कार्य में प्रवृत्त करता है, एकाग्र, ऊर्जान्वित, प्रेरित और अन्ततोगत्वा उसे मुक्त भी करता है। स्वामी सत्यानन्द जी ने कहा है कि हमें सर्वदा मन को मित्र बनाकर रखना चाहिए। इसका तात्पर्य यह कि मन का कभी विरोध नहीं करना चाहिए और उसे दबाया भी नहीं जाना चाहिए। हम इस पर आश्चर्य कर सकते हैं कि ऐसा कैसे हो सकता है कि

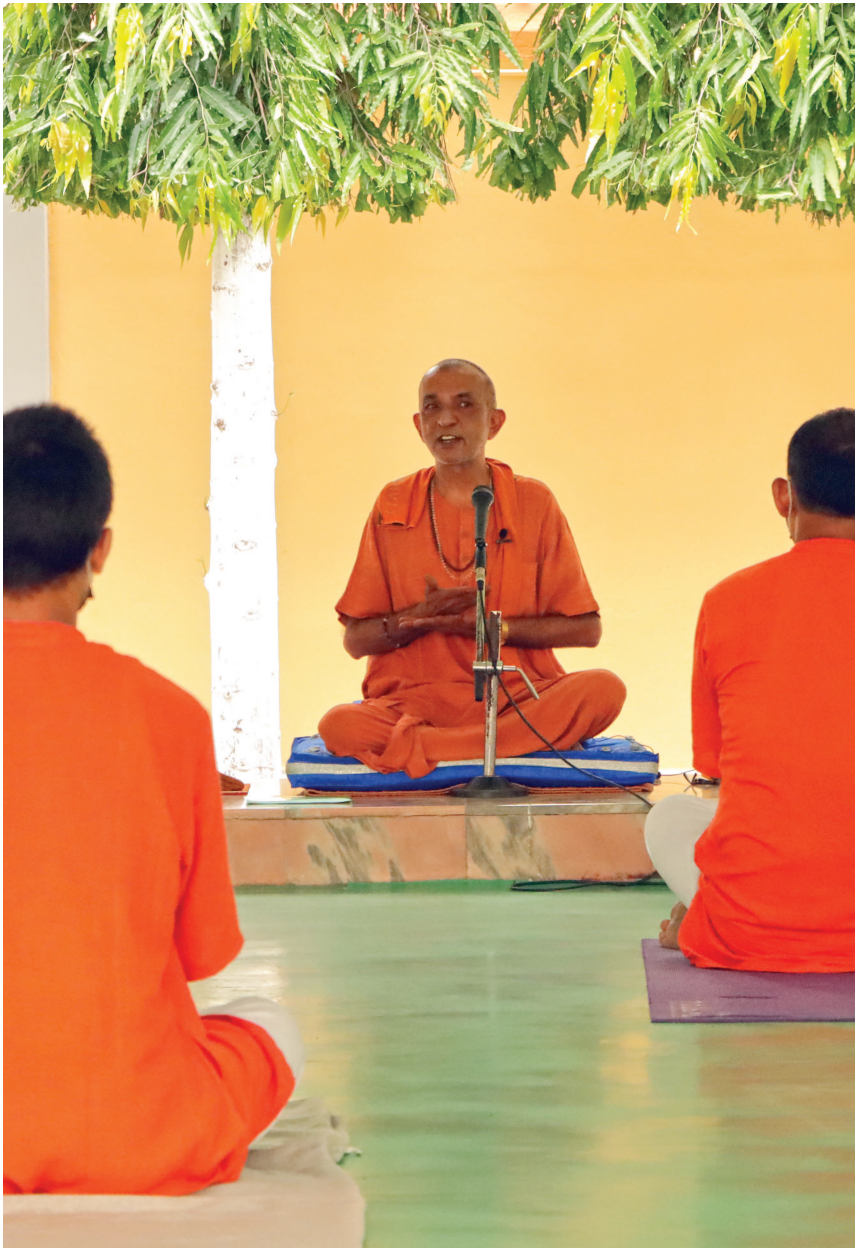

समाज में अपने मन का विरोध किये बिना रह सकें। यह मन तो हमें कुछ भी परामर्श दे सकता है। उदाहरण के तौर पर यदि इस प्रकार का विचार मन में आता है कि हम किसी को कड़े शब्द बोलकर आहत करें तो क्या हमें इस विचार को व्यक्त करना चाहिए या उसे छिपाना चाहिए? स्वामी सत्यानन्द जी का कहना है कि दोनों में कुछ भी न करें, बल्कि धारणा के माध्यम से मन को व्यस्त रखना सीखना चाहिए।

धारणा के अभ्यास से मन नकारात्मक से सकारात्मक अनुभूतियों की ओर प्रेषित होता है। क्या यह मन की चिकित्सा नहीं है? नकारात्मक विचारों के कारण मन जितनी व्यथा झेलता है वह सब कुछ, बिना सामना किये, बिना दबाये या व्यक्त किये हटा दिया जाता है। आज हम भाईचारे और शान्ति की बात करते हैं, किन्तु ऐसे सकारात्मक उद्गार तभी संभव होंगे जब मन रूपान्तरित हो जाय। मन के नकारात्मक गुण अलगाव, वेदना और पीड़ा उत्पन्न करते हैं, मेल-मिलाप का भाव नहीं रहता। प्रत्येक व्यक्ति अपने को दूसरे से अलग समझता है। धारणा के माध्यम से मन उन अवरोधों को दूर कर देता है जो मनुष्य को मनुष्य से अलग करता है। यह हमें एक नया दृष्टिकोण देता है जो अधिक संतुलित होता है और जो हमारे आन्तरिक वातावरण को और भी सामंजस्यपूर्ण बनाता है।

अनुवांशिक ढाँचे का रूपान्तरण

आज विश्व में व्याप्त प्रमुख बीमारियाँ अनुवांशिक त्रुटियों के कारण होती हैं, जो हम अपने माता-पिता से विरासत में मिली होती हैं। ये वायरस या बैक्टिरिया से नहीं होतीं, बल्कि ये त्रुटियाँ डी.एन.ए. संरचना में होती हैं, और कोई भी दवा इन्हें ठीक नहीं कर सकती, फिर भी अनुवांशिक त्रुटियों को सोच-विचार या मनोभाव से परिवर्तित किया जा सकता है। दृढ़ मनोभाव अनुवांशिक संरचना को इस प्रकार से प्रभावित कर सकते हैं जैसे कि कोई दवा नहीं कर सकती। इसी कारण धारणा का अभ्यास मानव जाति के लिए इतना अमूल्य है, क्योंकि धारणा वहाँ प्रभावकारी हो सकती है जहाँ सभी दवाइयाँ हार चुकी हैं। वैदिक एवं तांत्रिक शास्त्रों में निष्णात ऋषियों ने इसे बहुत पहले ही समझ लिया था। धारणा और ध्यान के अभ्यासों का प्रयोग कर उन्होंने अपनी डी.एन.ए. की संरचना को रूपान्तरित कर दिया था।

मानव जाति के कल्याण के लिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण बिन्दु है, क्योंकि इसी में हमारी समस्याओं के निदान की सम्भावना है। सारे संसार में लोग बीमारियों और असामंजस्य के कारण कष्ट पा रहे हैं। आधुनिक विज्ञान के अधिकाधिक विकास के बावजूद कोई निदान नहीं पाया गया है। इसलिए अब समय आ गया है जब हम इसके उत्तर के लिए अपने अन्दर ढूँढें। अपनी अनुवांशिक त्रुटियों का सुधार करने की क्षमता हममें है। बात इतनी ही है कि हमें किसी ने सिखाया नहीं कि हम इस तक पहुँचें कैसे? इस शक्ति का प्रकटन धारणा के अभ्यास के माध्यम

से होता है। अतएव धारणा न केवल आध्यात्मिक अनुभूति के लिए महत्त्वपूर्ण है, बल्कि दैनिक जीवन के लिए भी जिससे हम स्वस्थ, प्रसन्न एवं संतुलित बने रहें।

धारणा की प्रक्रिया से अनुवांशिक ढाँचे का सम्पूर्ण रूपान्तरण अवश्य हो सकता है जिससे स्थूल, सांसारिक चेतना को आध्यात्मिक चेतना में परिवर्तित किया जा सके। अन्तर इतना ही है कि यह रूपान्तरण एक अति परिशुद्ध आयाम में होता है, भौतिक में नहीं। जब धारणा में सिद्धि हो जाती है तब ये अनुवांशिक ढाँचे जो पूर्व में केवल अन्नमय कोश से प्रभावित थे, अब प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय कोश के प्रभाव के अन्तर्गत भी आ जाते हैं। इस प्रकार अब समस्त अस्तित्व अभ्यास से प्रभावित होने लगता है और हम एक पूर्णतया भिन्न व्यक्ति भी बन सकते हैं। जीवन्त स्मृति में हमारे सामने रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी शिवानन्द, स्वामी सत्यानन्द और आनन्दमयी माँ जैसे उदाहरण हैं। वैदिक इतिहास में भी अनेक ऋषि-मुनियों के सुन्दर उदाहरण हैं, जिन्होंने धारणा, ध्यान और समाधि के माध्यम से महती अन्तर्ज्ञान की शक्ति का विकास किया।

विश्व-प्रेम के लिए निर्देश

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

इस जगत् में प्रेम ही एक सार वस्तु है। यह नित्य, असीम तथा अविनाशी है। ईश्वर प्रेम है, प्रेम ईश्वर है। स्वार्थ, लोभ, अभिमान तथा घृणा हृदय को संकुचित बनाते हैं तथा विश्व-प्रेम के विकास में बाधक हैं। निष्काम सेवा, सत्संग, प्रार्थना, मंत्र-जप आदि के द्वारा विश्व-प्रेम का क्रमश: विकास कीजिए। स्वार्थ के द्वारा हृदय के संकुचित हो जाने पर मनुष्य अपने स्त्री, बच्चे, मित्र तथा सम्बन्धियों से ही प्रेम करता है। थोड़ी उन्नति करने पर वह अपने जिले के लोगों से प्रेम करने लगता है। तब वह प्रान्त के लोगों से प्रेम करता है। फिर वह अपने देशवासियों से तथा अन्तत: विभिन्न देशों के वासियों से भी प्रेम करने लगता है। चरमावस्था में वह सभी से प्रेम करने लगता है। वह विश्व-प्रेम को प्राप्त करता है। सारी बाधाएँ दूर हो जाती हैं। हृदय विशाल हो जाता है।

विश्व-प्रेम के बारे में बातें करना तो बहुत आसान है, परन्तु उसे व्यवहार में लाना अति कठिन है। मन की संकीर्णताएँ मार्ग में बाधक बनकर आती हैं। पहले के बुरे संस्कार बाधक बनते हैं। लौह-संकल्प, प्रबल इच्छा-शक्ति, धैर्य, संलग्नता तथा विचार के द्वारा आप सभी बाधाओं को बड़ी आसानी से जीत सकते हैं। हे मेरे प्रिय मित्रों! यदि आप सच्चे हैं तो ईश्वर की कृपा आपको प्राप्त होगी।

विश्व-प्रेम की परिसमाप्ति अद्वैत-चेतना में होती है। यही उपनिषद् के ऋषियों की घोषणा है। शुद्ध प्रेम महान् समताप्रदायक है। हफीज, कबीर, मीरा, गौरांग, तुकाराम, रामदास, सभी ने इस विश्व प्रेम का आस्वादन किया था। दूसरे लोगों ने जिसे प्राप्त किया है, उसे आप भी प्राप्त कर सकते हैं।

अनुभव कीजिए कि सारा जगत् आपका शरीर है, आपका अपना घर है। मनुष्यों के बीच जितने भी अवरोधक हैं, उन्हें नष्ट कर डालिए। बड़प्पन की भावना तो मूर्खता है। विश्व-प्रेम का विकास कीजिए। सभी से एकता रखिए। अलग होना तो मृत्यु है। अनुभव कीजिए कि सारा जगत् विश्व-वृन्दावन है। अनुभव कीजिए कि यह शरीर ईश्वर का चल-निकेत है। जहाँ भी आप हों – घर, ऑफिस, स्टेशन या बाजार, सर्वत्र अनुभव कीजिए कि आप मन्दिर में ही हैं। हर कार्य को ईश्वर की ही पूजा समझिए। कर्मफल को ईश्वरार्पित कर हर कार्य को योग में परिणत कर डालिए। ऐसी भावना कीजिए कि सारे प्राणी ईश्वर के ही रूप हैं। यह जगत् ईश्वर द्वारा ही परिव्याप्त है – *ईशावास्यमिदं सर्वम्*।

चीनी तथा चीनी के खिलौने, बर्तन तथा मिट्टी, लोहे की कांटी तथा तलवार, जल तथा फेन, आभूषण तथा सोना – ये दो वस्तुएँ नहीं, एक ही हैं। इसी भाँति

सच्चे ज्ञान के उदय होने पर विभिन्न रूपों में प्रतीत होने वाला जगत् केवल आत्मा ही रह जाता है। जीवात्मा और परमात्मा एक बन जाते हैं।

हे प्रभु! मैं तुझमें हूँ, तू मुझमें है। मैं वही हूँ जिससे मैं प्रेम करता हूँ तथा जिससे मैं प्रेम करता हूँ , वह मैं ही हूँ। हे ज्योति! मेरी बुद्धि आलोकित कर। हे प्रेम! मेरे हृदय को परिप्लावित कर। हे शक्ति! मुझे शक्ति प्रदान कर। हे प्रभु! तू साहस है, मुझमें साहस भर दे। तू करुणा है, मुझे करुणा से भर दे। तू शान्ति है, मुझे शान्ति से भर दे। तू प्रकाश है, मुझे प्रकाश से भर दे। हे प्रभु! तू नदी है। तू बादल है। तू सागर है। तू पौधा है। तू रोगी है। तू चिकित्सक है। तू ही रोग है। तू ही औषधि है।

सब कुछ ईश्वर का ही है। मैं उसी का कार्य कर रहा हूँ। मैं उसके हाथों का निमित्त मात्र हूँ। उसी की इच्छा हो कर रहेगी।

हे स्नेह और करुणा के आराध्य देव!

तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है।

तुम सच्चिदानन्दघन हो।

तुम सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो।

तुम सबके अन्तर्वासी हो।

पूर्ण ईश्वरार्पण कीजिए। ईश्वर के लिए उन सब चीजों का त्याग कीजिए जो अनात्मा हैं। इस प्रकार जीवन-यापन कीजिए मानो ईश्वर तथा आपके अतिरिक्त

और कोई है ही नहीं। ईश्वर आपके हृदय में निवास करता है, फिर आप एकाकीपन का भान कैसे कर सकते हैं? प्रार्थना, जप, कीर्तन, ध्यान, योगाभ्यास के द्वारा उसकी संगति प्रेरणा प्रदान करती है।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः – यह जगत् मिथ्या है, इसका अस्तित्व है ही नहीं, ऋषियों ने ऐसी घोषणा की है। हम इस जगत् को उसी प्रकार देखते हैं जिस प्रकार रस्सी में सर्प, मृगतृष्णा में जल, सीपी में रजत। एक आदमी ऑफिस से थका-माँदा घर लौटता है और दरवाजे के भीतर घुसते ही उसे लगता है मानो उसके पैरों तले कोई सर्प आ गया है। अन्धकार के कारण वह इस वस्तु की जाँच नहीं कर पाता। उस अवस्था में विचार-शक्ति काम नहीं करती। उसका सिर चकराने लगता है, वह भयभीत हो जाता है। वह चक्कर खाकर जमीन पर गिर जाता है। लोग तुरन्त ही हल्ला मचाने लगते हैं कि इस मनुष्य को सर्प ने काट लिया। लोगों की भीड़ एकत्र हो जाती है। रोना, चिल्लाना, प्रार्थना, मन्त्रादि प्रारम्भ हो जाते हैं। इसी बीच एक बुद्धिमान व्यक्ति आता है। वह कहता है, 'मार्ग छोड़ो, मैं जरा रोगी को देखूँ।' वह शान्तिपूर्वक रोगी की जाँच करता है और कहता है, 'सर्प ने आपको कहाँ पर काटा?' वह व्यक्ति धीमे स्वर में कहता है, 'दरवाजे से चार गज की दूरी पर।' हाथ में बत्ती लेकर वह वृद्ध मनुष्य देखने निकल पड़ता है। सर्प तो स्थिर रहने वाला नहीं। वह वृद्ध तथाकथित स्थान पर सर्प को देखता है, परन्तु रोशनी ने उसे फूलों की माला के रूप में बदल दिया। वह विजयी भाव से उस माला को हाथ में लेकर मरणासन्न व्यक्ति के नजदीक आता है। 'यही तो वह सर्प है जिसने तुम्हें काटा था। इसमें जहर तो जरा भी नहीं। उठ बैठो, अपनी कमीज बदलो। यह पसीने से भीग गयी है।' वह व्यक्ति तुरन्त स्फूर्तिमान हो जाता है, दु:ख तथा भय दूर हो जाते हैं। वह तुरन्त उठ जाता है, अपने रक्षक को गले लगता है तथा भीड़ को विदा करता है।

यही हिसाब इस जगत् का भी है। यह ब्रह्म के ऊपर अध्यास है। जैसा यह दिखायी पड़ता है, वैसा यह है नहीं। जब तक आप अन्धकार में इसे देखेंगे, तब तक यह सर्पवत् मालूम पड़ेगा। ज्ञान-दीप को जलाइए, यह जगत् अदृश्य हो जाएगा और आप सारतत्त्व ब्रह्म का साक्षात्कार करेंगे।

ईश्वर अदृष्ट गुरु है जो अपने महान् पुत्रों तथा प्रकृति के द्वारा मनुष्य को नित्य सुख की प्राप्ति के रहस्यों की शिक्षा देता है। जीवन शिक्षाओं से भरपूर है। जो उन्हें सुनता है, वह मुक्ति अथवा ज्योति की ओर अग्रसर होता है, जो उनकी अवहेलना करता है, वह अन्धकार में मग्न रहता है। चतुर्दिक् दु:ख तथा विपत्ति आपको यह स्पष्टत: बतलाते हैं कि आपने जान-बूझ कर जीवन के उपदेशों की अवहेलना की है।

समय रहते सावधान हो जाइए। आज मानवता अर्थनीति, राजनीति तथा समाजनीति के प्रतिकूल सिद्धान्तों का अनुसरण कर माया में गम्भीर निमग्न होती

जा रही है। ऐसे युद्ध-शस्त्रों का निर्माण किया जा रहा है जिनसे अधिकाधिक ध्वंस अवश्यम्भावी है। इस पतन को रोकिए। इस प्रतीयमान विजय को वास्तविक विजय में बदल डालिए। मार के प्रलोभनों के ऊपर विजय प्राप्त कीजिए। आप सुन्दर पलस्तर, रंगीन इंटों, अनुकूल वातायनों, रंगीन द्वारों तथा खिड़कियों से युक्त सुन्दर अट्टालिकाओं का निर्माण कर सकते हैं, परन्तु यदि उसकी नींव बालू की है, तो सारा भवन गिर कर ध्वस्त हो जाएगा। मनुष्य ने आधुनिक सभ्यता का निर्माण इसी बालू की नींव पर किया है। इस भवन में हर व्यक्ति ही इंट है, परन्तु वह स्वयं आसुरी, अधर्मी, लोभी एवं स्वार्थी बन बैठा है। अत: सारी बाह्य चमक-दमक के रहते हुए भहा विकृत भवन घृणा एवं काम की आँधी से ध्वस्त हो चला है।

मैं हर व्यक्ति से कहता हूँ, अपना पुनरुद्धार कीजिए। आदर्श व्यक्ति बनने के लिए प्रयत्नशील बनिए। इस पृथ्वी पर शीघ्र ही नयी सभ्यता का निर्माण होगा। परमाणु शक्ति से भस्मासुर जैसा वरदान प्राप्त हुआ है जिससे मनुष्य अपना ही सर्वनाश करने जा रहा है। जागो! ऐसा न होने दो। समय रहते ही दिव्य ज्योति की ओर मुड़ो। आप अभी भी सुधार कर सकते हैं तथा भलाई की ओर बढ़ सकते हैं। आप कितने ही निम्नतल में क्यों न जा गिरे हों, फिर भी आप उठ सकते हैं। भगवान ने निकृष्ट मनुष्य के लिए भी महान् ऐश्वर्य को रख छोड़ा है। हाँ, उसे आपना सुधार करना होगा। अन्धकार तथा पतन अपनी पराकाष्ठा को जा पहुँचा है। उठिए, पूर्णता की पराकाष्ठा की ओर अग्रसर होइए।

सर्वत्र नारायण-दृष्टि रखिए। सर्वत्र नारायण को देखिए। उसकी स्थिति का भान कीजिए। भगवान नारायण स्वयं दुष्ट, चोर तथा वेश्या के रूप में संसार के रंगमंच पर नाट्य-क्रीड़ा कर रहे हैं। यह उनकी लीला है। आपकी सार दृष्टि तत्क्षण परिवर्तित हो जाएगी। जो कुछ भी आप देखते, छूते तथा चखते हैं, वह ईश्वर के सिवा और कुछ नहीं है।

जिसे विश्वात्म दृष्टि प्राप्त है, वही सभी घटनाओं के रहस्य को समझ सकता है। वह जानता है कि भगवद्-इच्छा के बिना प्रबल झंझावात भी एक सूखे पत्ते को उड़ा नहीं सकता। 'क्यों' तथा 'कैसे' – ये अतिप्रश्न हैं। ईश्वर के नाम का जप कीजिए। विश्व कल्याण के लिए प्रार्थना कीजिए। प्रेम, सेवा-भाव तथा त्याग का आदर्श रखिए। आप इस विश्व को स्वर्ग बना सकते हैं।

संसार में रहिए। मानव-जाति की सेवा कीजिए। सभी को समान रूप से प्रेम कीजिए, परन्तु आसक्त न बनिए। अनासक्त रहिए। आत्मा में सन्तुष्ट रहिए। जीवन में बन्धनकारक कामनाएँ न रखिए। सेवा कीजिए। प्रेम कीजिए। दान दीजिए। शुद्ध बनिए। ध्यान कीजिए। साक्षात्कार कीजिए। अपने को ईश्वर के प्रति अर्पित कीजिए। यही दिव्य जीवन का सारांश है।

योग की सबसे बड़ी उपलब्धि – मन का नियंत्रण

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

योग द्वारा शरीर का शुद्धिकरण होता है, आत्मा ज्योतिर्मय होती है, इस बात में कोई संदेह नहीं, लेकिन योग से जो सबसे बड़ी उपलब्धि होती है वह है मन पर नियंत्रण और इसी विषय पर अभी हम चर्चा करेंगे।

बहुत-से लोग मन को विचार करने वाला मानते हैं। बचपन में हमने पढ़ा था कि मन आदतों की गठरी है, परन्तु आज यह गलत जान पड़ता है। मन, विचारों एवं आदतों का पुंज ही नहीं,बल्कि यह चेतना का समुद्र है, जिसमें संकल्प-विकल्प उठते रहते हैं। सांसारिक व्यक्ति जिस मन से अवगत है वह सम्पूर्ण मन नहीं है, बल्कि उस मन का एक अंश मात्र है। समग्र मन को जानने के लिए ही योग विद्या का सहारा लिया जाता है।

इस संदर्भ में एक पौराणिक कथा प्रासंगिक है। एक समय देवता एवं दानव समुद्र-मंथन के लिए एकत्र हुए। उन्होंने कूर्म को आधार बनाया, मंदराचल को बीच की टेकड़ी तथा वासुकि नाग को मंथानी की रस्सी बनाया। इससे चौबीस रत्नों की प्राप्ति हुई। यह कथा बड़े अलंकारों के साथ सुनाई जाती है। इस कथा को मनुष्य के संदर्भ में विचारिये। हमारे अन्दर की दो शक्तियाँ भी भीतर के मन का, अंत:करण

का मंथन कर रही हैं। यह अंत:करण समुद्र की तरह गहरा है। कहने का तात्पर्य यह है कि मन को केवल विचारने या संकल्प-विकल्प करने वाला न समझिए। इसमें समुद्र की भाँति गहराई, लम्बाई, चौड़ाई है। इसमें अनेकों रत्न, जीव-जन्तु हैं। मन अथाह, अपार, असीमित चैतन्य राशि है। इसमें अनेकों चीजें छिपी हैं।

अनेक लोग मन के प्रति गलत धारणा रखते हैं, उसे शत्रु समझते हैं, परन्तु वास्तव में मन मनुष्य का मित्र है। विद्वानों का, महापुरुषों का इससे बढ़कर कोई मित्र नहीं। गीता कहती है –

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जित:।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥6.6॥

अर्थात् यह मन मित्र एवं शत्रु दोनों है। जिसने मन को जान लिया, जिसने इसे वश में कर लिया उसके लिए यह मन मित्र है और जिसने इसे न जाना, वश में नहीं किया उसके लिए यह मन शत्रु है। इसलिए योग में ऐसी क्रियायें हैं जिनके द्वारा धीरे-धीरे अपने मन को पहचाना जाता है, उसकी शक्तियों को जाना जाता है एवं शनै: शनै: उसे वश में किया जाता है। योग में जितनी भी क्रियायें हैं उनका विषय यही है कि मन की उन शक्तियों को जो इन्द्रियों और विषयों के माध्यम से बाहर जा रही हैं उन्हें कुछ देर के लिए भीतर रखना।

संस्कार विसर्जन

यह मन इन्द्रियों के माध्यम से बाहर भटकता है; शब्द, रूप आदि के बीच विचरण करता है। अत: आवश्यकता इस बात की है कि उसे इन्द्रियों से काटकर कुछ देर के लिए अलग रखना। जितनी देर यह मन विषयों से हटकर रहता है, इन्द्रियों से असम्बन्धित रहता है, उतनी देर यह अपने संस्कारों को देखता है, अपनी प्रतिभाओं को, रत्नों को खोजकर लाता है। यह योग का प्रथम सिद्धान्त है, भौतिक शास्त्र में न्यूटन के सिद्धान्त की तरह। योग का मानना है कि जब मन इन्द्रियों से हटकर, रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गंध से परे हो जाता है तो उसमें विप्लव होता है, उसमें तरंगें उत्पन्न होती हैं, परिवर्तन उत्पन्न होता है – इसे ही आध्यात्मिक उन्नति कहते हैं।

अनेक प्रकार के योगाभ्यास करने वाले साधकों को, जो जपयोग, नादयोग, अन्तर्मौन, ध्यान आदि का अभ्यास कर रहे हैं, उन्हें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि उनके पुराने संस्कार, वर्तमान के संस्कार, पूर्ववर्ती जन्म की बातें, इस जन्म की बातें आदि विचारों के रूप में प्रकट होते हैं जिसके कारण जप से, इष्ट से, ध्यान के केन्द्र से साधक का ध्यान हट जाता है। परन्तु इससे घबराना नहीं चाहिए। ऐसा होना स्वाभाविक है। यह अभ्यास की उन्नति का प्रतीक है, विघटन का नहीं। साधक को इसे मार्ग की बाधा या अवनति नहीं समझना चाहिए। यह भी योग का एक सिद्धान्त

ही है। शुभ-अशुभ, अनाप-शनाप-अनर्गल जो भी बातें प्रकट हों, जो भी अच्छे-बुरे विचार प्रकट हों, होने दीजिए। 'संस्कारों का विसर्जन' योग का सिद्धान्त है।

योग का मानना है कि रजोगुण एवं तमोगुण प्रधान साधक के संस्कारों का उदय होता है, और होना भी चाहिए। सतोगुणी साधक के लिए यह नियम नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति का मन किसी-न-किसी गुण से परिपूर्ण होता ही है। कोई व्यक्ति तमोगुणी होता है, कोई रजोगुणी होता है तो कोई सतोगुणी होता है। गीता में कहा गया है –

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥6.26॥

अर्थात् जब-जब मन चंचल होकर भागे तब-तब उसे पकड़कर लाइए। मुझे यह युक्ति सर्वतोभावेन स्वीकार्य है, परन्तु यह सदैव याद रखिए कि यह मात्र सतोगुणी साधकों के लिए ही चरितार्थ होती है। रजोगुणी एवं तमोगुणी साधकों को अपने संस्कारों का दर्शन द्रष्टा भाव से, असंग भाव से करना चाहिए। उन्हें उपासना के समय उठने वाले विचारों से घृणा नहीं करनी चाहिए, न ही उनसे भयभीत होना चाहिए और न ही उन्हें दबाना चाहिए। परन्तु सतोगुणी व्यक्ति को चाहिए कि उत्पन्न होने वाले विचारों से मन को खींचकर उसे पुन: ध्यान के केन्द्र पर ले आवे। इस सिद्धान्त को याद रखकर साधना करनी चाहिए।

चित्त को अन्तर्मुखी करने के लिए, उसे विषयाकार-वृत्ति से हटाने के लिए, प्रपंच से आत्मा की ओर उन्मुख करने के लिए अनेक विधियाँ हैं, परन्तु व्यक्ति को यह जानना चाहिए कि उसके लिए उपयुक्त विधि क्या है? सभी साधक चाहते हैं कि ऐसी बढ़िया साधना करें कि जल्द-से-जल्द उन्हें समाधि लग जावे, अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त हो जावें, कुण्डलिनी जागृत हो जावे। इस विचार की मैं निंदा नहीं करता, परन्तु अवधि सीमा की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। हिसाब लगाइए कि एम.बी.बी.एस. डिग्री पाने में कितने वर्ष लग जाते हैं। एक भौतिक सम्पत्ति को पाने के लिए इतने वर्ष लगते हैं और जीवन की उस उच्चतम उपलब्धि को हम जल्द-से-जल्द पा लेना चाहते हैं!

मन की विविध भूमिकाएँ

साधना का सम्बन्ध तन से नहीं, मन से होता है। अत: मन के अनुकूल साधना होनी चाहिए। मन की कई श्रेणियाँ, कई भूमिकाएँ हैं – मूढ़ चित्त, क्षिप्त चित्त, विक्षिप्त चित्त, एकाग्र चित्त, निरुद्ध चित्त। इस प्रकार मन की विभिन्न भूमिकाओं से व्यक्ति संसार में विचरण करता है। इन्हीं भूमिकाओं के अनुरूप साधना होनी चाहिए अन्यथा उत्पात उत्पन्न होते हैं। यदि दूसरी-तीसरी कक्षा के विद्यार्थी को ऊँची कक्षा में प्रवेश दिया जावे तो वह कक्षा में ऊँघता ही रहेगा। ठीक इसी प्रकार यदि

तमोगुणी व्यक्ति को सिद्धासन-पद्मासन लगाकर मूलाधार में ध्यान कराया जावे, ताड़न क्रिया कराई जावे तो उसे भूत-प्रेत दिखाई देंगे। वह डर जायेगा।

अत: साधक को उसकी मन की भूमिका से धीरे-धीरे ऊपर उठाते हैं और वह अगली भूमिका में प्रवेश करता है। यदि मूढ़ व्यक्ति है तो उसे योग की ऐसी क्रियायें कराई जायें जिससे कि वह क्षिप्त भूमिका में पहुँच जावे। इस प्रकार शनै: शनै: उसके मन का स्तर ऊपर उठता जाएगा। यही नियम क्षिप्त चित्त वालों के लिए हैं। जो व्यक्ति निराशा से ग्रस्त हैं, जिनका दिल टूट चूका है, जिनका मन गेंद या शटल-कॉक की तरह उछलता है, उन्हें यदि उच्च साधना दी जाए तो वे पागल हो जाएँगे, कर्मकुंठित हो जाएँगे। जो संस्कारी हैं, एकाग्र चित्त वाले हैं, उन्हें आज्ञा चक्र पर ध्यान कराइए और बम-बम महादेव! वे ऊपर पहुँच जाएँगे। इसके विपरीत विक्षिप्त मन की भूमिका वाले व्यक्ति को जबरदस्ती मन को एकाग्र करने को कहा जाए तो वह मूर्ख बन जाएगा, उसकी प्रतिभा दब जाएगी।

इसलिए मन की विभिन्न भूमिकाओं एवं त्रिगुणों के आधार पर श्रेणीबद्ध साधनाएँ बताई जाती हैं। अपने को तोपचन्द समझकर उच्च साधना करना ठीक नहीं है। इसी से योग बदनाम होता है। शिक्षा में जिस तरह हम प्रारम्भ से विद्याध्ययन प्रारम्भ करते हैं, ठीक वैसे ही योग साधना में शनै: शनै: ऊपर जाना चाहिए। जल्दी मत करिए। मन के तीन दोष हैं – मल, आवरण और विक्षिप्तता। मन के मल को दूर करने के लिए कर्मयोग का बहुत योगदान है। इसी कारण हम कर्मयोग को बहुत महत्त्व देते हैं। भक्तियोग एवं राजयोग से मन की चंचलता को दूर किया जाता है तथा ज्ञानयोग के द्वारा ज्ञान प्राप्त होने पर आवरण, मन पर पड़ा परदा दूर हो जाता है। इन सब योगों का मिश्रित अभ्यास करना चाहिए।

सम्पूर्ण मानव जीवन साधना के लिए ही मिला है। समग्र जीवन अपने आप में एक साधना है। आप प्रात: एक घण्टा पूजा-पाठ करते हैं। वह एक साधना है। सांसारिक माया-मोह, दु:ख-सुख से आप छूटना चाहते हैं। वह स्वयं में एक साधना है। जिस आश्रम में हम सब रहते हैं वह समग्र रूप से एक साधना है।

कीर्तन और जप

साधना में उत्पात होता है एवं अवश्य होगा। लेकिन साधना की ऐसी कुछ विधियाँ हैं जिन्हें हर कोई अपना सकता है। प्रथम है कीर्तन एवं द्वितीय है जप। ये दो साधनायें ऐसी हैं जिन्हें गुरु के सान्निध्य की आवश्यकता नहीं। संसार के कोलाहल के बीच भी इनका अभ्यास किया जा सकता है, और कालक्रम से सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इन साधनाओं द्वारा वांछित फल की प्राप्ति में कुछ विलम्ब अवश्य होगा, परन्तु साधना के उत्पात उत्पन्न नहीं होते। आप केवल कीर्तन द्वारा ही अपनी निरंकुश आध्यात्मिक शक्ति, दैवी शक्ति, कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर सकते हैं। कीर्तन

चैतन्य एवं गतिशील होना चाहिए। मैं स्वयं ऐसा कीर्तन करता हूँ और अपने को भूल जाता हूँ। लोग सोचते होंगे यह विदेश से लौटा साधु नहीं, देहाती है, लेकिन मुझे इससे क्या मतलब।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहीं।
सब अंधियारा मिट गया, दीपक ज्योति माही।

यह हालत है। कहने का तात्पर्य यह है कि उच्च साधना के अभ्यास के बिना, क्रिया योग के जाने बिना भी आप कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर सकते हैं।

द्वितीय साधना है जप योग। इसमें गुरु से प्राप्त अपने अनुकूल मंत्र का जप किया जाता है। नियम यह है कि मंत्र गुरु द्वारा दिया गया हो। मंत्र को नाम या शब्द भी कहते हैं। मंत्र अपौरुषेय होते हैं, इन्हें किसी कवि ने नहीं रचा। श्लोक एवं मंत्र में भिन्नता है। वेद की ऋचाएँ मंत्र कहलाती हैं। इन मंत्रों को पहुँचे हुए ऋषियों ने सुना। वे ध्यान में बैठे, ऊँचे उठे, गहरे गये, अधिक गहरे गये। एक शरीर में पहुँचे वहाँ कुछ सुना, दूसरे में पहुँचे वहाँ कुछ सुना, तीसरी चेतना में पहुँचे वहाँ कुछ सुना। जो कुछ उन्हें सुनाई दिया वही मंत्र है। बाइबिल, कुरान, रामायण सब उद्घाटित किये गये हैं अर्थात् इन शब्दों का साक्षात्कार ऊँची अवस्था में ऋषि-मुनियों को हुआ। इन मंत्रों की साधना की भी कई विधियाँ हैं – मौखिक जप, श्वास पर जप, हृदय से जप, कंठ से जप, चक्रों में जप आदि। जप से चित्त शुद्ध हो जाता है। इस प्रकार कीर्तन एवं जप योग सर्वसाधारण के लिए सरल, सहज एवं फलदायी साधना है, जिसे हर कोई अपनाकर मन को जीतने का प्रयास कर सकता है।

परमहंस सत्यानन्द – मेरी स्मृतियाँ

स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती

आज गुरु पूर्णिमा के महान् दिन और शुभ पर्व पर मैं पूज्य गुरुजनों के चरणों में प्रणाम करके कुछ शब्द कहना चाहूँगी। अपने गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी का आशीर्वाद मेरे साथ बहुत रहा है। गुरुजी से मैं पहली बार सन् 1953 में मिली। ऋषिकेश में उनके दर्शन हुए जब परम गुरुदेव, स्वामी शिवानन्द जी के चरणों में हम पहुँचे थे। उस समय स्वामी सत्यानन्द जी को वहाँ देखकर मुझे लगा कि ये ध्रुव-प्रह्लाद जैसे छोटे-से बालक यहाँ पर कहाँ से आ गये। उसके बाद जब हम लोगों ने स्वामी शिवानन्द जी से अनुरोध किया कि हमारे यहाँ राजनाँदगाँव में प्रवचन के लिए किसी को भेजिए तो उनका यही उत्तर था कि आपका प्रान्त हिन्दी भाषी है और मेरे यहाँ सब दक्षिण भारतीय संन्यासी हैं, सिर्फ एक संन्यासी है जो हिन्दी, अँग्रेजी और संस्कृत समझता है। लेकिन वह मेरा सेक्रेटरी है, मेरी पुस्तकों का अनुवाद करता है, प्रूफ देखता है, योग वेदान्त का संपादक है और बैंक-मार्केटिंग आदि सब काम वही करता है। पर कभी भेजूँगा उसको। इस तरह तीन वर्ष बीत गये।

सन् 1956 में जब श्री स्वामीजी परिव्राजक जीवन के लिए निकले और दिल्ली में निवास कर रहे थे तब स्वामी शिवानन्द महाराज का पत्र हमें मिला कि आप लोग हमेशा स्वामी सत्यानन्द को बुलाते थे न, अब बुलाइये और उनके खूब प्रोग्राम बनाइये, उनकी खूब मदद कीजिए। प्रभु की कृपा कि वे हमारे यहाँ आये और हम लोग इस तरह रहने लगे मानो कभी एक-साथ ही थे, पर किसी कारण बिछुड़ गये थे। हमने कभी उनको न बड़ा समझा, न पराया समझा, बल्कि अपने परिवार का एक आत्मीय सदस्य माना। *क्रमश:*

– 'मेरे आराध्य के चरणों में' से दिनश खरे, दुर्ग द्वारा संकलित

कर्मयोग – गीता के आलोक में

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

श्रीमद् भगवद् गीता के तीसरे अध्याय में अर्जुन श्रीकृष्ण से एक प्रश्न करता है कि भगवन्! यदि आप कर्म की अपेक्षा ज्ञान को श्रेष्ठ मानते हैं, तो फिर मुझे भयंकर कर्म करने को क्यों कह रहे हैं? एक तरफ आप कहते हो कि ज्ञान उत्तम है, ध्यान के द्वारा ज्ञान प्राप्त करो। दूसरी तरफ मुझसे यह घोर कर्म, युद्ध करने के लिए कहते हो। जब ज्ञान और ध्यान का मार्ग उत्तम है, तब आप मुझे कर्म करने के लिए क्यों कहते हैं?

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव॥3.1॥

इस प्रश्न के उत्तर में श्रीकृष्ण एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथ्य उजागर करते हैं। वे अर्जुन से कहते हैं कि कोई भी मनुष्य क्षणमात्र के लिए भी बिना कर्म के नहीं रहता, क्योंकि समस्त मनुष्य जाति, सारी सृष्टि प्रकृतिजनित गुणों के वशीभूत होकर कर्म करने के लिए बाध्य हो जाती है। कर्म केवल जीवन का धर्म ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण सृष्टि की आधारशिला है। जो भी इस सृष्टि में आता है, वह कर्म से अलग नहीं होता, बल्कि कर्म उसके जीवन का अंग होता है –

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥3.5॥

कर्म दो प्रकार के होते हैं, चेतन और अचेतन। चेतन कर्म में तुम्हें मालूम रहता है कि मैं काम कर रहा हूँ या नहीं, करना चाहता हूँ या नहीं। चेतन कर्म को तुम अपनी इच्छा द्वारा निर्देशित कर सकते हो। लेकिन अचेतन कर्म हर समय शरीर, मन, बुद्धि और भावना में चलता रहता है। वही तुम्हें तुम्हारे जीवन की जानकारी देता है। इसलिए श्रीकृष्ण कहते हैं कि कर्म के बिना कोई भी व्यक्ति नहीं रह सकता।

जब कर्म के बिना कोई व्यक्ति नहीं रह सकता तो सबसे अच्छा उपाय यही है कि कर्म करते रहो। यह संसार कर्म का क्षेत्र है। कर्म के क्षेत्र में तुम कर्म का त्याग कैसे कर पाओगे? जहाँ पर कर्म द्वारा ही सब कुछ प्राप्त होता है, वहाँ पर तुम बिना कर्म के कैसे रह सकते हो? कर्म तो करना ही पड़ेगा। लेकिन एक उपाय जरूर कर सकते हो –

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥3.7॥

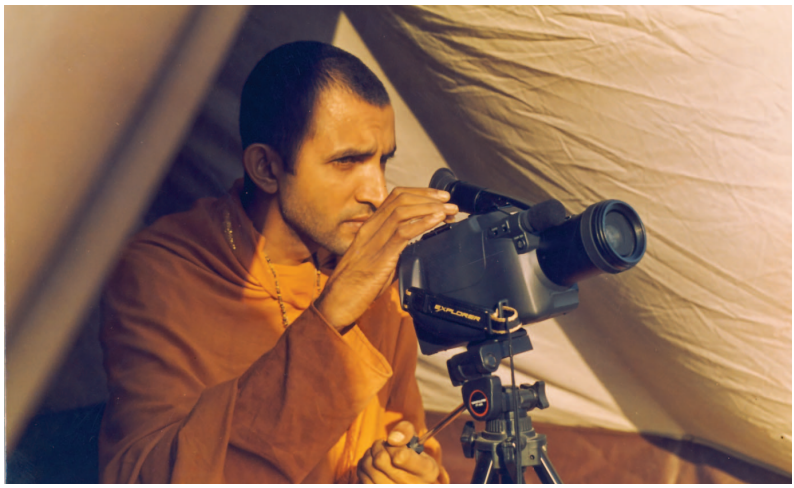

जो मनुष्य अपने मन द्वारा इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त होकर कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है। यहाँ पर पहली बार कृष्ण जी ने 'कर्मयोग' शब्द का प्रयोग किया है, अभी तक वे कर्म शब्द का प्रयोग कर रहे थे। उनके कहने का तात्पर्य है कि अपनी इन्द्रियों को वश में करो और अनासक्त होकर कर्म करो। जो इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त होकर कर्म करता है, उस व्यक्ति को कर्मयोगी कहते हैं, और उस अवस्था को कर्मयोग।

इन्द्रिय-संयम तथा अनासक्ति

कृष्ण जी ने यहाँ पर कर्मयोग की सुन्दर और उत्तम व्याख्या दी है। वे मात्र यह नहीं कह रहे कि तुम काम करो और फल की आशा मत करो। वह तो एक दर्शन, एक सिद्धान्त हुआ। जब इन्द्रियाँ हमारे वश में हो जाएँ, हमारे मन को भ्रमित न करें, तब कर्मयोग सिद्ध होने लगता है। अगर कर्म में आसक्ति न हो, बल्कि अनासक्त होकर कर्म किया जाए तो वह कर्मयोग कहलाता हैं। इस प्रकार इन्द्रिय-निग्रह और अनासक्ति, ये कर्मयोग के दो चरण होते हैं। हम लोग जीवन में कर्म करते रहते हैं। लेकिन उस कर्म में अपनी वासनाओं, इन्द्रियों और मन को संभाल नहीं पाते, जिसका दुष्परिणाम हमें भुगतना पड़ता है। इसलिए श्रीकृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं कि इन्द्रिय-संयम तथा अनासक्ति, दोनों को कर्म से जोड़ो। अगर ये दोनों कर्म से जुड़ जाएँ, तो कर्म बंधन का कारण नहीं, बल्कि उत्थान और मोक्ष का कारण बनेगा। श्रीकृष्ण आगे कहते हैं –

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥3.30॥

'अपना चित्त परमात्मा में लगाकर, सम्पूर्ण कर्मों को परमात्मा के प्रति अर्पित करके आशारहित, ममतारहित और संतापरहित होकर कर्म कर, युद्ध कर।' एक बार जब व्यक्ति में अनासक्ति की भावना आ जाती है, जब विषयों से वह अपने आंतरिक आकर्षण को दूर कर देता है, तब मन में आशा समाप्त हो जाती है, व्यक्ति ममतारहित और संतापरहित हो जाता है। आशारहित, ममतारहित, संतापरहित होना बहुत बड़ी चीज है।

जब मन का सम्बन्ध विषयों से होता हैं, तब अपेक्षाओं और वासनाओं का जन्म होता है, और उस समय ममता जागती है। ममता का मतलब हुआ मेरा अपना अस्तित्व, मेरा अपना ख्याल। अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए मैं हर प्रकार का प्रयत्न करता हूँ, अपने आपको इस संसार का केन्द्रबिन्दु बना लेता हूँ। मेरा जो भी प्रयास होता है, जो भी कर्म होता है, वह मेरी ही इच्छा की पूर्ति के लिए होता है। इस प्रकार ममता स्वार्थ का रूप भी ले लेती है। आदमी अपने में ही पागल हो जाता है। यहाँ पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्मयोग सिद्ध करने के लिए जो सूत्र दिया है, वह अनासक्ति का सूत्र है। अगर व्यक्ति आसक्त नहीं होगा तो संतापरहित, दु:खरहित, ममतारहित और फल की आशा से मुक्त हो जाएगा। कृष्ण जी आगे समझाते हैं –

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥3.34॥

हर इन्द्रिय और उसके विषय में राग और द्वेष छिपे रहते हैं। मनुष्य को राग और द्वेष, दोनों को वश में करना चाहिए, क्योंकि ये दोनों ही कल्याण-मार्ग में विघ्न करने वाले महान् शत्रु हैं। जब भी तुम कुछ करोगे, इनमें से एक गुण तुम्हें प्रभावित करेगा। इसीलिए अनासक्त होकर रहो। जब अनासक्त रहोगे, तब कर्म सफल होगा। लेकिन हर कर्म को प्रेरित करने वाला प्रबल तत्त्व काम है, जिसके बारे में श्रीकृष्ण सावधान करते हैं –

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च॥3.39॥
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्॥3.40॥
एवं बुद्धे: परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥3.43॥

'अग्नि के समान कभी पूर्ण न होने वाला काम ज्ञानियों के लिए नित्य वैरी का रूप लेता है और उनके ज्ञान को ढक लेता है। इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि – ये सब काम के वास स्थान कहे जाते हैं। यह काम मन, बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा ही

ज्ञान को ढककर जीवात्मा को मोहित करता है। इसलिए बुद्धि से परे अत्यंत सूक्ष्म और श्रेष्ठ आत्मा को जानकर, बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके इस कामरूपी दुर्जय शत्रु को मार डाल।'

कामवासना ही व्यक्ति को राग या द्वेष से जोड़ती है, यही ज्ञान को ढक देती है। जब कामवासना ज्ञान को आच्छादित कर देती है, तब जीवात्मा उसी कामवासना से मोहित हो जाती है। इस प्रकार विषयों, इन्द्रियों और मन में कामवासना ही राग और द्वेष की जड़ होती है।

यहाँ पर कामवासना का तात्पर्य पुरुष और स्त्री के सम्बन्ध से नहीं हैं। यहाँ पर 'काम' का तात्पर्य मन की एक ऐसी अवस्था से है जिसमें वह एक ही चीज को बार-बार सोचते रहता है। मन में कोई धुन या सनक सवार हो जाती है, जो एक ही चीज को पकड़े रहती है। मन उस चीज से मुक्त नहीं हो पाता। श्रीकृष्ण के अनुसार मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ ही इस काम के अधिष्ठान, आवास और आश्रय हैं।

कर्मयोग नामक इस तीसरे अध्याय में श्रीकृष्ण का अर्जुन के प्रति मुख्य संदेश यही है कि तुम अनासक्ति की भावना से जुड़कर राग, भय और क्रोध को अपने नियंत्रण में करो और कर्मयोग की भावना को लेकर चलो, ताकि तुम्हारे जीवन में जो काम और वासना की सनक है, उसे तुम रोक सको, शांत कर सको।

ज्ञानरूपी तपस्या

चौथे अध्याय में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जिनके राग, भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गए हैं और जो मुझमें प्रेमपूर्वक स्थित रहते हैं, ऐसे बहुत-से भक्त ज्ञानरूपी तपस्या से पवित्र होकर मेरे स्वरूप को प्राप्त करते हैं। वे आगे कहते हैं कि जिसकी आसक्ति नष्ट हो गई है, जो देह-अभिमान और ममता से रहित हो गया है और जिसका चित्त निरन्तर परमात्मा के ज्ञान में स्थित रहता हैं, ऐसे यज्ञरूपी कर्म करने वाले मनुष्य के सम्पूर्ण कर्म मुझमें ही विलीन हो जाते हैं। कृष्ण जी आगे कहते हैं कि जिस यज्ञ में अर्पण भी ब्रह्म है, हवन किए जाने योग्य द्रव्य भी ब्रह्म है, कर्ता और अग्नि भी ब्रह्म है और आहुति देने की क्रिया भी ब्रह्म है, उस ब्रह्मकर्म में स्थित रहने वाले योगी द्वारा प्राप्त किए जाने योग्य फल भी ब्रह्म ही होता है।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिता:।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागता:॥4.10॥
गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतस:।
यज्ञायाचरत: कर्म समग्रं प्रविलीयते॥4.23॥
ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥4.24॥

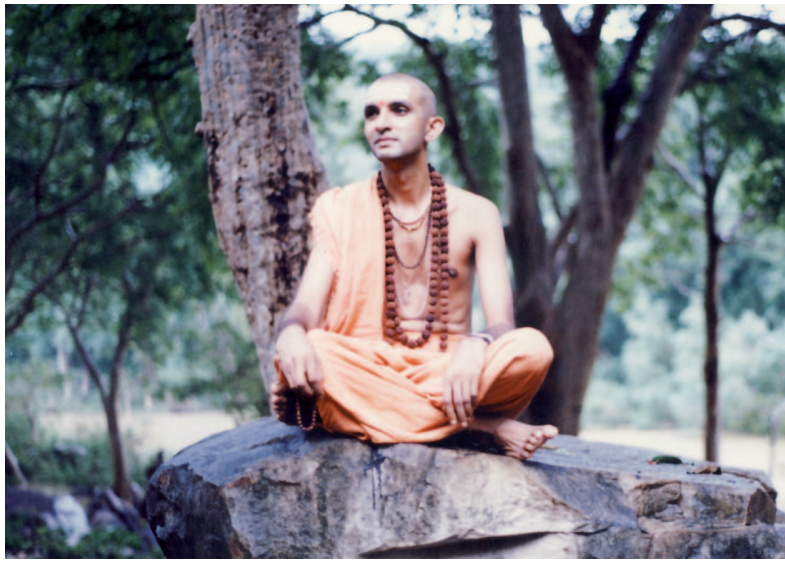

चौथे अध्याय का नाम ज्ञानकर्मसंन्यास-योग है, जिसमें कर्मयोग की विचारधारा ही आगे बढ़ रही है। तीसरे अध्याय के अंत में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तुम काम को वश में करो, क्योंकि जब काम वश में हो जाता है तब राग, भय और क्रोध पूर्णरूपेण नष्ट हो जाते हैं। एक बार जब राग, भय और क्रोध पूर्णरूप से नष्ट हो जाते हैं, तब ज्ञानरूपी तपस्या के द्वारा साधक मेरे स्वरूप को प्राप्त करते हैं। यहाँ पर भगवान ने ज्ञान को भी तपस्या कहा है, क्योंकि ज्ञान को जीवन में चरितार्थ करने के लिए प्रयास करना पड़ता हैं। ज्ञान केवल खोपड़ी की विषय-वस्तु नहीं है कि आपने किसी चीज को जान लिया और फिर खोपड़ी में ताला लगा दिया।

देखा जाए तो दुर्योधन भी कम ज्ञानी नहीं था। महाभारत युद्ध के पहले जब श्रीकृष्ण सन्धि का प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर गए थे, तब उनका प्रस्ताव सुनकर दुर्योधन ने कहा कि आप जो कह रहे हैं, वह सत्य है, लेकिन मेरी एक कमजोरी है। *जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः* – धर्म क्या है, मैं यह भली-भाँति जानता हूँ, लेकिन उस ओर मेरी प्रवृत्ति, मेरी रुचि नही है। *जानामि अधर्मं न च मे निवृत्तिः* – अधर्म क्या है, वह भी मैं अच्छे से जानता हूँ, लेकिन अधर्म मार्ग से अपने आप को मुक्त नहीं कर सकता हूँ।

ये दुर्योधन के शब्द हैं और उसकी जैसी स्थिति हम लोगों में भी दिखलाई देती है। हम लोग बहुत सारी चीजें जान तो लेते हैं, लेकिन उस ज्ञान को अपने व्यवहार में नहीं उतार पाते हैं। अच्छा क्या है, सब जानते हैं, लेकिन व्यवहार में उतारना कितना कठिन होता है! बुरा क्या है, सब जानते हैं लेकिन अपने आचरण से उस

चीज को दूर करना बहुत मुश्किल हो जाता है। ज्ञान केवल एक बौद्धिक व्यायाम नहीं है। जो हम जानते हैं उसे अपने जीवन में चरितार्थ करना ही वास्तव में ज्ञान की तपस्या है, जिसके लिए मनुष्य को बहुत प्रयत्न, पुरुषार्थ और संघर्ष करना पड़ता है।

आपने अपने जीवन में कभी-न-कभी अनुभव किया होगा कि जब हम किसी एक विचार को, किसी एक ज्ञान को चरितार्थ नहीं कर पाते हैं, तब मन में द्वन्द्व उत्पन्न होता है। एक व्यापारी दुकान में बैठकर अन्न बेचता है। उसमें मिलावट होती है, लेकिन वह अन्न का पूरा गुणगान करके उसे बेचता है। बाद में उसके मन में यह विचार भी आता है, 'मैं गलत कर रहा हूँ, इसमें मिलावट है। लेकिन फिर भी मुझे कहना पड़ रहा है कि यह शुद्ध है। अगर मैं कहूँगा कि इसमें मिलावट है तो कोई नहीं खरीदेगा, मैं भूखा रह जाऊँगा।' अगर वही व्यवसायी यह कह दे कि इस अन्न में मिलावट है और इसका आधा दाम है, वह अन्न शुद्ध है, उसका पूरा दाम है, तो उसमें कोई हर्जा नहीं है। मिलावट का आधा दाम और शुद्ध का पूरा दाम। तुम्हें जो चाहिए, अपनी हैसियत के हिसाब से ले लो। अगर तुम्हें अच्छी चीज चहिए तो अच्छी चीज लो। अगर तुम्हारी जेब हल्की है, तो मिलावट वाली चीज ले लो। दोनों चीजें उपलब्ध हैं। झूठ बोलने की कोई आवश्यकता नहीं।

व्यक्ति को गलत कार्य, गलत चिन्तन या गलत व्यवहार करने से जो ग्लानि होती है, वह मन को चोट मारती है। भले ही तुम लोग इस बात को स्वीकार करो या न करो, लेकिन सत्य यही है कि कहीं-न-कहीं असत्य हमारे मन को चोट पहुँचाता है। अगर हम मिलावटी और शुद्ध, दोनों वस्तुएँ रखें तो क्या हर्जा है? हमारा मन तो साफ रहेगा। ग्राहक को जो खरीदना है, खरीदे। अच्छा भी उपलब्ध है और खराब भी। लेकिन खराब को अच्छा कहकर बेचना, यह ज्ञान की तपस्या नहीं, बल्कि ज्ञान का निरादर है। यहाँ पर ज्ञान को आत्मसात् नहीं, बल्कि उसे अपने जीवन से दूर किया जा रहा है।

इसीलिए यहाँ पर भगवान ने एक विशेष शब्द 'ज्ञानरूपी तपस्या' का उपयोग किया है। जिस किसी दुर्लभ चीज को प्राप्त करने के लिए तुम साधना करते हो, उसी प्रकार ज्ञान को सिद्ध करने के लिए भी साधना की आवश्यकता पड़ती है। जब ज्ञान सिद्ध हो जाता है, तब आसक्ति सर्वथा नष्ट हो जाती है।

आगे श्रीकृष्ण कहते हैं कि जिसकी आसक्ति पूर्ण रूप से नष्ट हो गई है और जो देहाभिमान एवं ममता से रहित हो गया है, उसके द्वारा सम्पादित किए गए सभी कर्म ईश्वर में ही विलीन हो जाते हैं। यहाँ पर ज्ञान की प्राप्ति के साथ फिर से यह भाव आता है कि न मैं कर्ता हूँ, न भोक्ता। कर्ता-भोक्ता कोई और है। इसलिए कृष्ण जी कहते हैं कि जब तुम ज्ञान को प्राप्त करके काम का आवरण हटा देते हो, तब तुम्हारे द्वारा किए गए सभी कर्म यज्ञस्वरूप होकर ईश्वर को स्वत: अर्पित हो जाते हैं। फिर वे आगे कहते हैं –

योगसन्न्यस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय॥4.41॥
तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मन:।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत॥4.42॥

'जिसने कर्मयोग की विधि को सिद्ध करके, समस्त कर्मों को परमात्मा को अर्पित कर दिया है और जिसने ज्ञान द्वारा, विवेक द्वारा समस्त संशयों का नाश कर दिया है, ऐसे व्यक्ति को कर्म संसार से नहीं बाँधते। इसलिए तू हृदय में स्थित इस अज्ञानजनित संशय को ज्ञानरूपी तलवार द्वारा छिन्न कर समत्व रूपी कर्मयोग में स्थित हो जा।'

यहाँ पर दो चीजें दिखलाई दे रही हैं। पहली, प्रभु अर्जुन को कर्म करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं, और दूसरी, अर्जुन को कर्म से आसक्ति हटाने के लिए कह रहे हैं। कर्म करो और साथ ही कर्म से अपनी आसक्ति को हटा दो। जब कर्म से तुम्हारी आसक्ति हट जाएगी, तब मन, इन्द्रिय और बुद्धि शांत हो जाएँगे। फिर तुम्हारा चित्त संसार के विषयों और आकर्षणों में न लगकर, आत्मतत्त्व में केन्द्रित हो जाएगा। जब तुम उस एकाग्रता को, उस स्थिरता को प्राप्त कर लोगे, तब तुम्हारे समस्त कर्म ईश्वर को ही समर्पित हो जाएँगे।

– 17 फरवरी 2012, गंगा दर्शन

गृहस्थ और योग

स्वामी सत्यव्रतानन्द सरस्वती

कुछ लोग यह समझे बैठे हैं कि योग संन्यासियों के लिए ही सम्भव है, गृहस्थों के लिए यह सम्भव नहीं है। लेकिन यह उनकी भ्रान्ति है। पूज्य गुरुदेव, स्वामी सत्यानन्द जी एक बार किसी भक्त की शंका का समाधान करते हुए कह रहे थे, 'योगाभ्यास तो अभिशप्त जनों के लिए, जीवन संग्राम में जूझते हुए लोगों के लिए एक नैसर्गिक वरदान है।'

योगाभ्यास करने वाले एवं उससे अनुराग रखने वाले लोगों को इस मूल मन्त्र को हमेशा सामने रखना चाहिए कि वे संसार के हैं और संसार उनका है। संसार से उन्हें अनुराग होगा, तभी योग की सफलता है। अगर लोग संसार से ऊबने लगें, घृणा करके उससे भागने लगें, एकान्त और सूनेपन को ही योगाभ्यास का साधन

स्थल मानने लगें तो क्या होगा? संसार का नाश हो जायेगा। संसार को दार्शनिक लोग स्वप्न मानते हैं, माया मानते हैं, लेकिन दार्शनिकों के योग से हमारा योग भिन्न है। संसार ही हमारी कर्मभूमि है। गीता के कर्मयोग की शिक्षा अर्जुन को योगीराज श्री कृष्ण ने समर भूमि में दी, इसी से स्पष्ट हो जाता है कि योग का सच्चा अर्थ जीवन संग्राम से लड़ने और जीतने का है।

भोग के बीच ही योग की साधना सच्ची साधना है। हमें अपने सांसारिक कार्यों को त्यागना नहीं, उनको संघर्ष करके पूरा करना ही है। लेकिन उनको पूर्ण करते वक्त भी हमें नैतिक मर्यादाओं को छोड़ना नहीं है। जिस तरह नदियाँ चारों ओर से समुद्र को भरती रहती हैं, फिर भी समुद्र मर्यादा नहीं छोड़ता, उसी तरह सांसारिक वासनाओं के बावजूद भी मर्यादा को जो बनाये रखे, वही योग सच्चा योग है। जो योग भोग का संताप होने पर मनुष्य के मन को शांति नहीं देता, वह योग नहीं है। कर्म ही निष्ठा है, उसी पर मोक्ष आधारित है और कर्म करने में जो शारीरिक या मानसिक बाधायें हैं, उन बाधाओं को दूर करते हुए हमें कर्म करने में सक्षम बनाना ही योग का संकल्प है।

अत: योगाभ्यास के लिए शादी, विवाह, परिवार या गृहस्थी कोई बाधा नहीं है, वरन् अगर ध्यान दिया जाय तो गृहस्थों के लिए योगाभ्यास साधुओं से अधिक आवश्यक है। गृहस्थ आश्रम तो संन्यास से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग एवं राजयोग, ये चारों ही गृहवासियों के लिए लाभकारक हैं।

कई बार हम अन्ध-विश्वासी की तरह अनेक बातों को अपने बच्चों पर लाद देते हैं। इसको हम दमन कह सकते हैं, जिसका नतीजा यह होता है कि हमारी स्वाभाविक वृत्तियाँ पनप ही नहीं सकतीं, हम उन थोपे हुए विचारों को भी पकड़कर नहीं चल सकते। परिणामस्वरूप हमारे होनहारों का व्यक्तित्व कुण्ठित हो जाता है। अन्ध-विश्वासों से हमें बचना है और अपनी इच्छा शक्ति को अत्यधिक विकसित एवं दृढ़ करना है।

योग को हम तीन अर्थों में चाहते हैं – सामाजिक प्रगति, व्यक्तिगत सुख और स्वस्थ जीवन-दर्शन। गृहस्थाश्रम में ही इस संकल्प की पूर्ति मिल सकती है। स्वामी शिवानन्द जी इसी कारण गृहस्थाश्रम को ही योगाश्रम कहते थे। जो संसार की व्यथाओं से भागता रहा उसे योग की, सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। बेचारे गृहस्थों को कितने बड़े संघर्षों से गुजरना होता है। योग से उन्हें बहुत बड़ा सम्बल मिलेगा। अत: प्रत्येक गृहस्थ को इस ईश्वरीय वरदान से लाभान्वित होना चाहिए।

गुरुदेव कहते हैं – पहले के गुरु कठोरता से शिष्य को मिलारेप्पा जैसे महान् बनाते थे, और आज के गुरु ईनाम पाकर शिष्य को बेकाम बना देते हैं। गुरुदेव के इन शब्दों को जीवन में उतारा जाए तो हमारी आने वाली पीढ़ी सबल आत्म-विश्वास से कुछ कर सकेगी। इसलिए योग को अपनाना सबके लिए निहायत जरूरी है।

कोरोना काल में योग की भूमिका

संन्यासी योगप्रिया, पटना

'योग परम शक्तिशाली विश्व संस्कृति के रूप में प्रकट होगा और विश्व की घटनाओं को निर्देश देगा' – यह कथन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी का है जिसे उन्होंने अपनी साधना में चेतना की उच्च अवस्था में घटित होते हुए देखा था तथा अपनी परिकल्पना की भविष्यवाणी की थी।

सन् 2020 इस सदी की अप्रत्याशित, अभूतपूर्व घटनाओं का साक्षी बना जिसने सम्पूर्ण विश्व को यह मानने पर बाध्य कर दिया कि इस समस्त ब्रह्माण्ड को संचालित करने वाली कोई पराशक्ति है जिसके समक्ष ज्ञान-विज्ञान किसी की नहीं चली। वह मानव जाति, जिसने अपनी तकनीकी आविष्कारों के मद में चूर उस परमसत्ता के अस्तित्व को नकारा था, प्रकृति के इस रूप को देखकर हतप्रभ एवं निष्चेष्ट द्रष्टा बनी रही। वर्तमान युग ऐसा है जिसमें तामसिकता अपनी चरम सीमा पर है और मानवता क्षत-विक्षत। कहावत है, *अति सर्वत्र वर्जयेत्* और शायद इसीलिए प्रकृति ने रूपांतरण की बागडोर स्वयं सम्हाली है। कोरोना रूपी महामारी ने पूरे विश्व को हिला कर रख दिया, तबाही का ऐसा मंजर न पहले कभी देखा न ही सुना गया। महामारियाँ अनेकों बार आयीं किन्तु मानव जाति ने अपने आप को इतना विवश पहले कभी नहीं पाया। जहाँ धन-दौलत, मंदिर-मस्जिद, चर्च-गुरुद्वारे, रिश्ते-नाते सब पर पूर्ण विराम लग गया। सब नि:शब्द और लाचार। इस महामारी का ऐसा खौफ पसरा कि सारी दुनिया संज्ञाहीन हो गई।

कहते हैं जहाँ समस्या है, वहीं समाधान भी है। जब तक कोरोना से बचाव के लिए टीके का आविष्कार नहीं हुआ था, इलाज के विविध उपाय अंधेरे में तीर की भांति चलाए जा रहे थे। ऐसे ही समय कोविड के अन्य प्रोटोकॉल के साथ-साथ योग को अपनी दिनचर्या में शामिल करने वाले अभ्यासियों ने कुछ अभ्यासों को अपनाया और उन्हें चमत्कारिक परिणाम प्राप्त हुए, जिसमें विश्व के कई देश शामिल हैं। अन्तर में योग की अग्नि विद्यमान थी, बस तीली लगाने भर की देर थी। पूरे विश्व में योग की ऐसी लहर उठी कि जन-मानस के लिए जीवन-दायिनी बन गई।

इसके अन्तर्गत आसन, प्राणायाम, योगनिद्रा तथा हठयोग के कुछ षट्कर्मों जैसे कुंजल, नेति आदि पर प्रयोग किए गए। कुछ चिकित्सकों ने, जो पूरे साल कोविड की ड्यूटी पर तैनात थे, नेति को अपनाकर अपने आप को सुरक्षित रखा। इस प्रयोग में योग की कई विधाओं को सम्मिलित किया गया जिनका शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्तरों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। मंत्रों का जाप, हवन एवं विविध अनुष्ठान भी शामिल किए गए। महामारी के कारण सभी संस्थाएँ

बंद हैं किन्तु लोगों की जिज्ञासा एवं विश्वास ने सम्पूर्ण विश्व को दूर रहते हुए भी एक छत्र के नीचे ला खड़ा किया और वह छत्र है योग।

इस पूरी प्रक्रिया में बिहार योग विद्यालय, मुंगेर का बड़ा योगदान रहा है, जहाँ से योग की अविरल धारा वहाँ के परमाचार्य परमहंस निरंजनानंद सरस्वती जी के मार्गदर्शन में निरंतर पूरी दुनिया में पहुँचाई जा रही है। उन्होंने समस्त मानव जाति को योग को जीवनशैली के रूप में अपनी दिनचर्या में शामिल करने का आह्वान किया है ताकि कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी हम अपना संतुलन एवं संयम बनाए रखने में सक्षम हो सकें। हम अपनी अंतर्निहित शक्ति को पहचानें, उद्घाटित करें और उसे अपने व्यक्तित्व के विकास का आधार बनावें। अब योग करने की नहीं, बल्कि हर पल जीने की कला बन रही है और यही हमारे पूज्य गुरु, स्वामी निरंजनानंद जी का मानव जाति के लिए संदेश है।

गुरु प्रसाद

गुरु पूर्णिमा 2021 के डिजिटल प्रसाद के अन्तर्गत बिहार योग एप्प का नवीन संस्करण विमोचित किया गया। विश्व भर के योग प्रेमियों और साधकों ने गुरु परम्परा के साथ अपने सम्बन्ध को सुदृढ़ करने तथा उनकी शिक्षाओं से प्रेरणा प्राप्त करने के लिए इस अवसर का सदुपयोग किया। विमोचन के दो सप्ताह के भीतर निम्नांकित 111 देशों से लगभग 30,000 योग साधकों ने इस एप्प को डाउनलोड किया।

अल्बानिया	कोलम्बिया	भारत	मौरिशस	स्लोवाकिया
अण्डोर्रा	कोस्टा रिका	इंडोनेशिया	मेक्सिको	स्लोवेनिया
अंगोला	कोट द्वा	ईरान	मौंटेनेग्रो	दक्षिण अफ्रीका
अर्जेन्टीना	क्रोएशिया	आयरलैण्ड	मोरक्को	दक्षिण कोरिया
आरमीनिया	कुरासाओ	आइल ऑफ मैन	नेपाल	स्पेन
ऑस्ट्रेलिया	साइप्रस	इस्राएल	हॉलैण्ड	श्री लंका
ऑस्ट्रिया	चेकिया	इटली	न्यूज़ीलैण्ड	स्वीडन
अज़रबायजान	कॉन्गो	जापान	नाइजिरिया	स्विट्ज़रलैण्ड
बाहरेन	डेनमार्क	जर्सी	नॉर्वे	ताइवान
बंगलादेश	डोमेनिकन	कज़ाकिस्तान	ओमान	तन्ज़ानिया
बेलारूस	रिपब्लिक	कीनीया	पाकिस्तान	थाईलैण्ड
बेल्जियम	इक्वाडोर	कोसोवो	पनामा	ट्रिनिडाड एण्ड
बोलिविया	मिस्र	कुवैत	पेरु	टोबेगो
बोस्निया	फिनलैण्ड	किर्गिज़स्तान	फिलिपीन्स	तुर्की
बोत्सवाना	फ्रांस	लैटविया	पोलैण्ड	यूक्रेन
ब्राज़िल	जौर्जिया	लेबनान	पुर्तगाल	युनाइटेड अरब
बल्गेरिया	जर्मनी	लिथुएनिया	पोर्तो रिको	एमीरेत्स
बुर्किना फासो	घाना	लक्सेमबर्ग	कतर	इंग्लैण्ड
कम्बोडिया	ग्रीस	मकाओ	रोमानिया	संयुक्त राज्य
कैमेरून	गुआतेमाला	मलेशिया	रूस	अमेरिका
कनाडा	हौंग कौंग	मालदीव्स	सऊदी अरब	उरुग्वे
चिले	हंगरी	माली	सर्बिया	विएतनाम
चीन	आइसलैण्ड	माल्टा	सिंगापुर	ज़िम्बाबवे

साथ ही इस अवधि में 69 देशों से 3000 नए योगानुरागियों ने सत्यम् योग प्रसाद वेबसाइट अथवा एप्प का पंजीकरण किया।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

घेरण्ड संहिता

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 404, ISBN: 978-81-86336-35-9

इस पुस्तक में महर्षि घेरण्ड प्रणीत घेरण्ड संहिता की स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती द्वारा विशद व्याख्या की गयी है। इसमें सप्तांग योग की व्यावहारिक शिक्षा दी गयी है। शरीर शुद्धि की क्रियाओं, जैसे, नेति, धौति, वस्ति, नौलि, कपालभाति और त्राटक से आरंभ कर आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि के अभ्यासों का सरल भाषा में सचित्र सविस्तार वर्णन किया गया है। यह पुस्तक प्रारंभिक से लेकर उच्च योगाभ्यासियों के लिए अत्यंत उपयोगी, ज्ञानवर्द्धक एवं संग्रहणीय है।

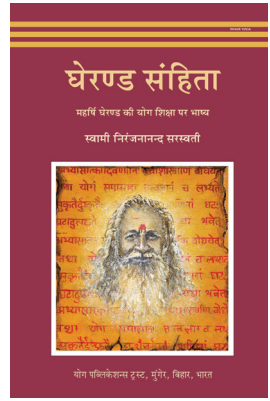

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91–6344–222430, 9162783904

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net
बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद
बिहार योग परम्परा की समस्त प्रकाशित कृतियाँ *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना
biharyoga.net तथा *satyamyogaprasad.net* पर स्वस्थ जीवन हेतु यौगिक जीवनशैली साधना उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/
योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2020-23
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

सभी ग्राहकों के लिए महत्त्वपूर्ण सूचना

आत्मस्वरूप

हरि: ॐ

हमें यह सुखद समाचार देते हुए हर्ष हो रहा है कि जनवरी 2021 से मासिक योगा (अंग्रेज़ी) तथा योगविद्या (हिन्दी) पत्रिकाएँ सभी ग्राहकों, सहयोगियों, योगप्रेमियों, भक्तों तथा आध्यात्मिक साधकों के लिए निम्नांकित वेबसाइटों पर नि:शुल्क उपलब्ध रहेंगी –

www.satyamyogaprasad.net

www.biharyoga.net

वर्तमान कोरोनावायरस महामारी और उससे उत्पन्न अनिश्चितता के कारण योगा और योगविद्या की प्रकाशित प्रतियाँ 2021 में ग्राहकों के लिए उपलब्ध नहीं रहेंगी। इसलिए 2021 में इन पत्रिकाओं के लिए नए सदस्यता आवेदन या पुरानी सदस्यता को बढ़ाने के आवेदन स्वीकार **नहीं** किए जा रहे हैं। अत: इन पत्रिकाओं के लिए सदस्यता आवेदन **मत** भेजिए।

पत्रिकाओं सम्बन्धी परिस्थिति की जानकारी आपको समय-समय पर मिलती रहेगी।

इस बीच श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती और श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की शिक्षाओं को ग्रहण कर उन्हें अपनी दिनचर्या में आत्मसात् एवं अभिव्यक्त कीजिये ताकि आपका जीवन उदात्त और उन्नत बन सके।

आपके स्वास्थ्य, कल्याण और शांति के लिए श्री स्वामी सत्यानन्द जी के आशीर्वाद सहित,

ॐ तत्सत्

सम्पादक